योगविद्या

वर्ष 6 अंक 9
सितम्बर 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो 1: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती;
2: स्वामी निरंजनानन्द; 3: स्वामी सत्यसंगानन्द;
4: स्वामी निरंजनानन्द एवं स्वामी सत्यसंगानन्द

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥2.66॥

अर्थ–जो अस्थिर और चंचल है, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं मिल सकता और न ही वह ध्यान के योग्य है। जो ध्यान नहीं कर सकता उसे शांति नहीं मिल सकती और जिसके पास शांति नहीं, उसे सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

जो व्यक्ति अपने मन को ध्यान में स्थिर नहीं कर सकता उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अस्थिर व्यक्ति ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकता और उसमें न तो आत्मज्ञान के प्रति श्रद्धा होगी और न ही तीव्र मुमुक्षुत्व। जो ध्यान का अभ्यास नहीं करता, मानसिक शान्ति उससे कोसों दूर है।

विषय वस्तुओं की कामना ही शान्ति का शत्रु है। जो व्यक्ति विषयासक्त है उसे लेशमात्र सुख मिलना भी दुर्लभ है। उसका मन हमेशा चंचल रहेगा और विषयों के पीछे लगा रहेगा।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

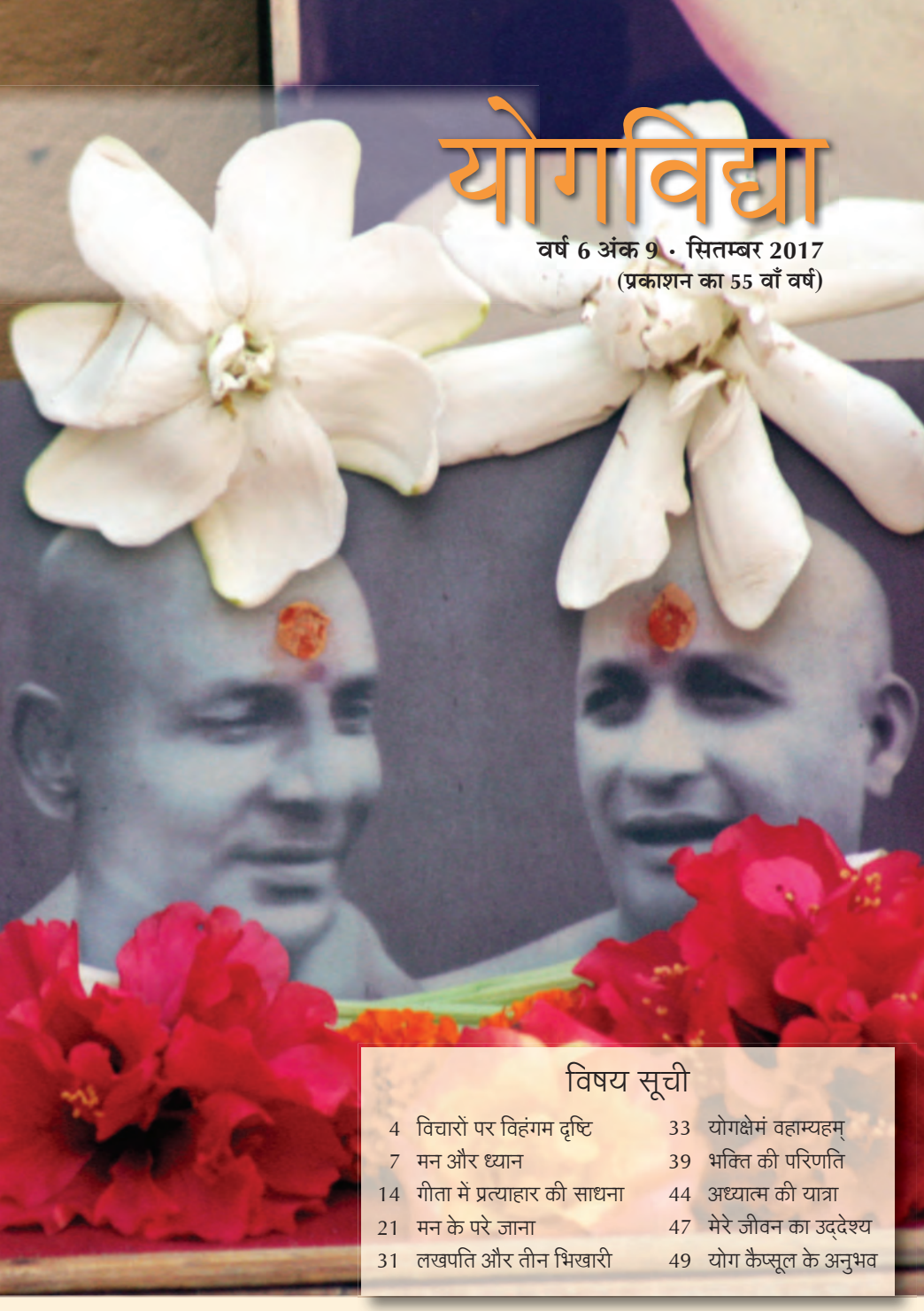

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 9 · सितम्बर 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 विचारों पर विहंगम दृष्टि
7 मन और ध्यान
14 गीता में प्रत्याहार की साधना
21 मन के परे जाना
31 लखपति और तीन भिखारी
33 योगक्षेमं वहाम्यहम्
39 भक्ति की परिणति
44 अध्यात्म की यात्रा
47 मेरे जीवन का उद्देश्य
49 योग कैप्सूल के अनुभव

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

विचारों पर विहंगम दृष्टि

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

'आप जैसा सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं'—यह सूक्ति सत्य और सही है। आप अपने को स्वस्थ मानें, आप स्वस्थ बन जायेंगे। आप अपने को दुर्बल मानें तो दुर्बल बन जायेंगे। आप अपने को विद्वान्, महात्मा या परमात्मा मानें, तो वैसे ही बन जायेंगे। इनसे अलग कुछ मानें, तो मूर्ख, दुरात्मा और जीव ही बने रहेंगे। विचारों से ही मनुष्य बनता और बिगड़ता है। हर व्यक्ति का अपना एक वैचारिक जगत् होता है, जिसमें वह निवास करता है। संकल्प में अद्भुत शक्ति है, आप इससे आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं। आपने भूतकाल में जैसा सोचा था, आज आप उसी का मूर्त्त रूप हैं। आज जो कुछ आप सोच रहे हैं, आपका भविष्य उसी से बन रहा है। यदि आप मन, वचन और कर्म से सच्चे हैं, तो आपका भविष्य उज्ज्वल है। यदि आप सच्चे नहीं हैं, तो उसका उत्तरदायित्व आप पर है।

बुरे विचार मन में कैसे घर करते हैं? इनका सामना कैसे किया जाये? बुरे विचारों से आपको ऊब प्रतीत होती है। ये आपको अप्रिय लगते हैं। बस, यही तो आपकी आध्यात्मिक प्रगति की पहचान है। बहुतों को इसकी परख नहीं होती। बहुतों का मन इतना अस्त-व्यस्त और सांसारिक दूषणों से ग्रस्त होता है कि उनके लिए मन का सन्तुलन बनाये रखना असंभव हो जाता है। बहुतों की मानसिक प्रवृत्तियाँ इतनी उच्छृंखल होती हैं कि उन्हें नियंत्रित करके शुद्ध विचारों को ग्रहण नहीं कर पाते। बहुतों को बुरे विचारों से परेशानी नहीं होती है। कारण कि उनके मन में इस प्रकार के विचार विरल होते हैं, वे आते हैं, चले जाते हैं, ज्यादा क्षति नहीं पहुँचाते।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक और रहस्यवादी, विचारों की पवित्रता पर बहुत जोर देते हैं। विचार-विज्ञान भी अपने आप में एक विषय है। आपको उत्तम विचारों से सम्पन्न होना चाहिए तथा निम्न विचारों से पीछा छुड़ाना चाहिए। यदि आप निकृष्ट विचारों की सृष्टि करते हैं, तो अपना और सारे विश्व का अहित कर रहे हैं। आप विचारों के जगत् में विषाणु फैला रहे हैं। आपके अपावन विचारों से अन्य लोग भी प्रभावित होते हैं, क्योंकि विचारों का भी संचरण होता है, वे भ्रमण करते हैं और जन-मानस को प्रभावित करते हैं। बुरे विचारों से अनेक रोग और शोक उत्पन्न होते हैं, इससे आपको ही नहीं, सारे संसार को क्षति पहुँचती है। इसलिए आप मन को उत्तम विचारों से भरें तथा अपना और अपने चारों ओर के जगत् का हित करें। आपके उत्तम विचारों से चारों ओर आनन्द, उल्लास, आश्वासन और सुख-शान्ति का साम्राज्य फैलेगा।

अपने मन को बड़ी सतर्कता से परखिए। आपके मन में राग-द्वेष, विक्षेप, घृणा आदि के भाव अपना सिर न उठा सकें; धारणा, ध्यान और प्रतिपक्ष-भावना

के अभ्यास द्वारा उन्हें परास्त करते रहिए। प्रारम्भ में तो शुभ और अशुभ विचारों में परस्पर संघर्ष छिड़ता है। शुभ विचारों की परिधि में अशुभ विचार धीरे से प्रवेश कर लेता है। पहले वह खुशामद-मिन्नत करके थोड़ी-सी जगह घेरता है और फिर अपना विस्तार करना शुरू करता है। वह धीरे-धीरे मन को सांसारिक चीजों में फँसाता है, फिर उसे पूरी तरह से सांसारिक बना लेता है।

प्रतिपक्ष-भावना के माध्यम से अशुभ विचारों के स्थान पर शुभ विचारों को आश्रय दीजिए। यह राजयोग की पद्धति है। अशुभ विचारों की जगह शुभ विचार ले लेते हैं, और किसी तरह के द्वन्द्व के बिना आपका मन्तव्य पूरा हो जाता है। मन से बुरे विचारों को 'खदेड़ कर निकालना' बहुत कठिन है। तरीका यही है कि उत्तम विचारों को मन में आने दीजिए, हीन विचारों का कारवाँ अपने-आप अन्यत्र कूच कर जाएगा। इसके लिए आपको लगन, अभ्यास और अध्यवसाय की जरूरत पड़ेगी।

मन की चंचल अवस्था में किसी महापुरुष, देवी या देवता को लक्ष्य बना लेना चाहिए और बार-बार उन्हीं पर मन को टिकाना चाहिए। मन बहुत उछल-कूद मचाकर

वहीं पहुँचेगा और कुछ काल के लिए शान्त रहेगा। शान्ति की यह अवधि धीरे-धीरे बढ़ेगी और अन्त में आपका उच्छृंखल मन हमेशा के लिए शान्त हो जाएगा। आप शान्ति-स्वरूप परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकेंगे।

अपने मन को स्वयं उपदेश भी दिया जा सकता है। किसी महापुरुष को अपना पथ-प्रदर्शक निर्धारित कीजिए और अपने मन को उनके बताये आदर्शों पर चलने का आदेश दीजिए। यह विधि मन को वशीभूत करने में सहायक होगी। मान लीजिए, किसी ने आपका कुछ अहित कर दिया। आप उससे तुरन्त बदला लेना चाहेंगे। अपने मन को इस समय समझाया जाए कि क्षमा बहुत बड़ा नैतिक गुण है, तो यह समझने से रहा। अत: आप ऐसा मत कीजिए। मन को इस प्रसंग से मोड़ने की कोशिश कीजिए। कुछ उपदेश मत दीजिए, सिर्फ अच्छे आदर्श सामने रखिए। महापुरुषों का स्मरण कीजिए और उनके आदर्शों का अनुशीलन कीजिए। बार-बार मन को उन पर लाइए और आप देखेंगे कि आपका मन हिंसात्मक विचारों को छोड़ चुका है।

आप बुरी संगति में रहते हों तो यह संगति छोड़ दीजिए। यदि आप अतीत में बुरे कर्मों में पड़ चुके थे तो उनके बारे में अब सोचना व्यर्थ है। मन को अच्छे लक्ष्य के विषय में समझाइये और उसे अच्छे मार्ग पर लाइए। आत्मानुशीलन, सत्संग, सद्विचार आदि के माध्यम से मन का परिष्कार कीजिए। आपका अतीत आपके लिए बन्धन नहीं है। आप पहले कुछ भी रहे हों, अभी चाहें तो महामानव बन सकते हैं।

अपना उद्देश्य स्पष्ट रूप से सामने रखिए। आपके मार्ग में जो बाधक तत्त्व हों, उन्हें पहचान लीजिए और उनसे सावधान रहिए। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को सत्त्वगुण से जीतिए। काम, क्रोध और मोह को प्रेम, क्षमा और विवेक से जीतिए।

सुसंगति में रहिए। बातचीत बहुत थोड़ी कीजिए। बहिर्मुखता कोई अच्छा गुण नहीं है। विचारवान् पुरुष सदा अन्तर्मुखी होते हैं। ज्यादा मिलना-जुलना या अनावश्यक दोस्ती बढ़ाना जीवन का जंजाल है। एकान्तप्रियता एक उत्तम गुण है। ज्यादा दोस्ती से बहुत परेशानियाँ ही पैदा होती हैं। वैसे अपने पास-पड़ोस वालों से अच्छा सम्बन्ध रखना उचित ही है। आपसे उनको जरूरत पड़ सकती है, उनसे आपको जरूरत पड़ सकती है। संसार में इतना तो सम्बन्ध रखना ही पड़ता है, लेकिन किसके साथ घनिष्ठ और किसके साथ परिचयात्मक सम्बन्ध रखा जाता है, यह भी सोचने का विषय है। अत: आपको विवेकशील होना पड़ेगा, साथ-ही आपकी एकान्तप्रियता और गंभीर मनोवृत्ति में खलल न पड़े, यह भी सोच लीजिए।

बहुत एकान्तप्रियता भी किसी-किसी को मँहगी पड़ती है। इसलिए धार्मिक सत्संग में जाना अच्छा है। कुछ मार्गदर्शन मिलता रहता है। अन्यथा भय है कि किसी एक विचार को पकड़ कर आप बैठे हों, जो आपके लिए उपयोगी न हो तथा इसके बदले कोई अन्य विचार भी नहीं मिलता है। इसके लिए सदाचारनिष्ठ व्यक्तियों से मिलना-जुलना तथा आध्यात्मिक सत्संग का सेवन करना बहुत आवश्यक है।

मन और ध्यान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

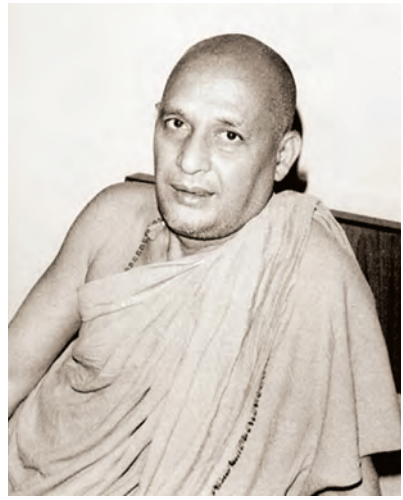

आज जिस विषय की हम चर्चा करेंगे वह है तो योग, किन्तु योग का वह पक्ष जो मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके कृतित्व से संबंधित है। जिस प्रकार हम प्राकृतिक पदार्थों से लोहा बनाते हैं और फिर उससे मशीन बनाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के पास एक कच्चा माल है जिसका नाम है मन। आप रोज मन के बारे में बोलते हो कि मेरा मन खराब है या मेरा मन प्रसन्न है या मेरा मन बेचैन है या मेरा मन शान्त है, मगर वास्तव में लोगों को मन के विषय में जानकारी नहीं है। मनुष्य की असमर्थता, दु:ख और निराशा का मुख्य कारण है कि वह अपने मन यानि चित्त को नहीं जानता। रोज-रोज जो भी अनुभव आपके जीवन में आते हैं उनके पीछे मुख्य नायक है आपका मन। सुख, दु:ख, भय, वासना, ईर्ष्या, आत्महत्या, पूजा या भक्ति के पीछे नायक यह मन ही है।

मन का स्वरूप

प्रश्न उठता है कि यह मन क्या है? इसका रूप क्या है, इसका वजन कितना है, इसकी क्षमता कितनी है, किस रंग का है, कहाँ पर रहता है, किन-किन तत्त्वों से बना है, कभी विचार किया मन के बारे में? विचार करो तो इसके अवयवों के बारे में चिंतन करना पड़ेगा। जैसे आप किसी फूल के विषय में सोचते हो तो उसके रंग को देखते हो, उसकी गंध का ख्याल आता है, उसके अन्य गुणों को देखते हो। ऐसी बहुत चीजें सोचनी पड़ती हैं। किसी वस्तु की जानकारी का मतलब होता है उसके अलग-अलग पक्षों की जानकारी।

मन तो पशुओं में भी है, आप में भी है, मुझमें भी है। रामकृष्ण परमहंस में भी मन था, विवेकानन्द जी में भी मन था, महर्षि अरविन्द में भी मन था। बुद्ध, महावीर इन सबमें मन था, और अब बैल में भी मन है। अन्तर क्या है? अन्तर जरूर होगा। सांख्य दर्शन और योग दर्शन में कहते हैं कि मन तीन गुणों से मिलकर बना है—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। मन प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ है। कोई कहता है

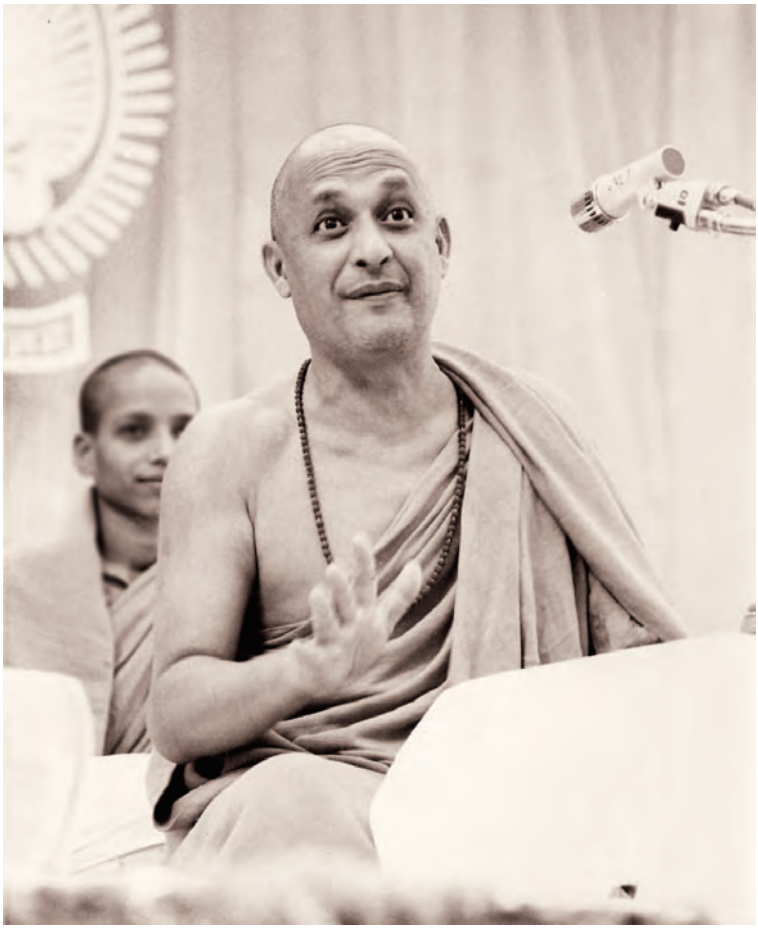

मन के अंदर चौबीस तत्त्व हैं तो कोई कहता है मन छब्बीस तत्त्वों से बना है। चौबीस हो या छब्बीस, अभी हम इस पर चिन्तन नहीं करेंगे। हमारा प्रयोजन यहाँ इतना ही है कि हम जो योगाभ्यास करते हैं, उससे अपने मन को विकसित करने का प्रयास करते हैं। जैसा कि संसार के पदार्थों में करते हैं। खेत में कपास बोते हैं, कपास से रुई बनती है, रुई से धागा बनता है, धागा से कपड़ा बनता है, कपड़े से थान बनता है, थान से धोती, साड़ी आदि बनती है, यह आप जानते हैं। उसी प्रकार मन के जो चौबीस या छब्बीस गुण हैं वे जानवरों में भी हैं, मनुष्य में भी हैं, ऋषि-मुनियों और वैज्ञानिकों में भी हैं, किन्तु योग के द्वारा इन तत्त्वों को अच्छी तरह से परिशुद्ध किया जाता है।

मन बहुत शक्तिशाली पदार्थ है। केवल विचार मन नहीं है। तुम्हारे मन में जो भावना उत्पन्न होती है, वह भी मन नहीं है। तुम्हें क्रोध आता है, वह भी मन नहीं है।

मन मनुष्य के अंदर एक प्रवाह है, जैसे बिजली का प्रवाह होता है। हर एक इन्सान के अंदर एक शक्ति का प्रवाह है। वह शक्ति बाहर की तरफ बहती है तो नष्ट हो जाती है। उस शक्ति को ध्यान के द्वारा अन्तर्मुखी करते हैं। जब तुम ध्यान लगाते हो तो क्या करते हो? तुम चाहे राम का ध्यान करो, ॐ का ध्यान करो या गुरु का ध्यान करो, उस समय क्या करते हो? मन में दो भाग बना देते हो। एक भाग ध्यान की वस्तु पर केन्द्रित होता है, दूसरा अन्य विचारों को हटाते जाता है। ॐ का ध्यान करते हो तो अपने विचारों को, अपने मन की वृत्तियों को ॐ से तदाकार बनाते हो। इस ॐ के अलावा जो भी विचार तुम्हारे मन में आते हैं, उन्हें निकालते जाते हो, उनका निराकरण करते हो। जब हम किसी रसायन को शुद्ध बनाते हैं, तो उसमें कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जिन्हें निकाल फेंकना पड़ता है, जलाना पड़ता है, खत्म करना पड़ता है। इसी प्रकार मन में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं—एक को कहते हैं विकारी और दूसरे को कहते हैं निर्विकारी। जिस तत्त्व का हम ध्यान करते हैं वह निर्विकारी हुआ। इसके अलावा मन में जो अन्य विचार आते हैं उन्हें विकारी विचार कहते हैं।

चित्तशुद्धि की आवश्यकता

योग में सबसे पहली आवश्यकता है मन को, चित्त को शुद्ध करने की। अब यह सवाल उठता है कि इससे क्या फायदा होता है। मैं आप लोगा को यह बतलाना चाहता हूँ कि मनुष्य के शारीरिक दु:खों का कारण भी मन है और उसके व्यवहार में जो त्रुटियाँ होती हैं, उसके व्यक्तित्व में जो कुण्ठाएँ उठती हैं, उनका भी कारण मन है। जैसी शुद्धता, जैसी क्वालिटी आपके चित्त की होगी वैसी छाप आपके व्यक्तित्व पर पड़ेगी। आपको चिन्ता है या अहंकार की भावना है, आपको नींद कम आती हो या ज्यादा, आपको बहुत डर लगता हो या बहुत कड़े मिजाज के आदमी हो, यह सब मन की छाया है। मनुष्य के सारे व्यवहार, उसकी सारी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण, यह सब मन के ऊपर निर्भर है। सुख या दु:ख की जो अनुभूति है वह भी मन की गुणवत्ता पर निर्भर है। इस बात को बहुत कम लोग समझते हैं। सुख सुख नहीं है, तुम उसको सुख समझते हो। इसी तरह दु:ख दु:ख नहीं, तुम उसे दु:ख समझते हो। जैसी मन की अवस्था होगी, उसी प्रकार सुख और दु:ख अनुभव होते हैं। जब हम योग के द्वारा इस चित्त को शुद्ध करते हैं तो उसकी गुणवत्ता में, क्वालिटी में फर्क आता है और जैसे-जैसे मन की क्वालिटी में फर्क आता है, वैसे-वैसे आपके विचार, व्यवहार, कर्म, स्वप्न, निद्रा—सब अपने आप बदलते चले जाएँगे। आपको अपने से लड़ने की ज्यादा आवश्यकता नहीं है।

अब यही सवाल रहा कि इस मन के साथ क्या किया जाए और इसकी क्वालिटी को कैसे सुधारा जाए। आप रोज रात को संकल्प करते हैं कि कल ऐसा नहीं सोचेंगे,

ऐसा नहीं करेंगे, मगर दूसरे दिन वैसा ही हो जाता है। एक उदाहरण देता हूँ। हम लौह अयस्क को लेकर उसको गर्म करके कई विधियों से लोहा निकालते हैं। वह उसकी अंतिम अवस्था नहीं है। फिर उससे इस्पात बनाते हैं, वह भी अंतिम अवस्था नहीं है। उसके बाद उसको ढालते हैं। वह भी इसकी अंतिम अवस्था नहीं है। उसको ढालकर किसी मशीन का रूप देते हैं, जैसे लेथ मशीन या अन्य मशीन। वह भी इसकी अंतिम अवस्था नहीं है। उस मशीन के द्वारा हम दूसरी चीजें भी बनाते हैं। यह एक उदाहरण दिया। इसी प्रकार हमारे मन के अंदर बहुत-से ऐसे तत्व हैं, इस चित्त के अंदर बहुत-सी ऐसी वृत्तियाँ हैं जिन्हें आज नहीं तो कल किसी-न-किसी दिन नष्ट करना पड़ेगा।

लौह अयस्क की तरह ही मन होता है। अगर आपको लोहा बनाना है तो कुछ तत्त्वों को नष्ट करना पड़ेगा, पिघलाना पड़ेगा, तब आपका लोहा बनेगा। अगर पत्थर से मूर्ति बनानी है तो पत्थर काटना ही पड़ेगा। जहाँ नाक बनाओगे वहाँ बगल का पत्थर काटना ही पड़ेगा। किसी भी चीज के निर्माण में कुछ चीजों को नष्ट करना ही पड़ेगा। उसी प्रकार इस मन की क्वालिटी को बढ़ाना है तो चित्त की कुछ वृत्तियों का नाश करना ही पड़ेगा। ऐसी कौन-सी वृत्तियाँ हैं यह तो आप भी जानते हैं, मैं भी जानता हूँ। लोग कहते हैं कि ऐसा क्यों करेंगे। मैं यही कहता हूँ कि यदि मन को शक्तिशाली बनाना है, विकाररहित बनाना है, रोगरहित बनाना है, अगर मन के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाना है, मन के द्वारा अपने परिवार और समाज को प्रभावित करना है, तो वह मन दूसरा है, यह मन नहीं है।

समर्थ मन

आप लोगों को तीन शब्दों के बारे में जानकारी होगी—देश, काल और वस्तु, जिन्हें अंग्रेजी में स्पेस, टाइम और ऑब्जेक्ट कहते हैं। ये तीनों चीजें मन पर आधारित हैं, ये मन के तीन आयाम हैं। मन टाइम को, स्पेस को और ऑब्जेक्ट को प्रभावित करता है। यह केवल शारीरिक या पारिवारिक समस्याओं को प्रभावित नहीं करता, बल्कि सूक्ष्म स्तर तक पदार्थ को प्रभावित करता है। इसलिए जब आसन, प्राणायाम, अंतर्मौन वगैरह का अभ्यास करते हो, तो एक बात याद रख लो, योग का अभ्यास समय काटने के लिए नहीं है। योग का अन्तिम लक्ष्य कुछ और है। पहले तो लोग सोचते हैं, चलो भाई, स्वामीजी कुछ सिखला रहे हैं तो सीख लो। आसन और प्राणायाम घंटाभर करना अच्छा लगता है। अच्छा लगना योग का लक्ष्य नहीं है। यह शुरू में हम चारा फेंक रहे थे। योग का लक्ष्य है मनुष्य के अंदर की कर्तृत्व शक्ति, रचनात्मक क्रियाशक्ति महान् हो। तुम लेखक हो, तुम कवि हो, वह रचनात्मक क्रियाशक्ति है। जो रचनात्मक क्रियाशक्ति मनुष्य के अन्दर छिपी हुई है, उसको विकसित करने का माध्यम है योग, और उसका आधार है मन।

दुनिया में जितने लोग विजेता हुए हैं, अमर हुए हैं, महान् और रचनात्मक काम कर गए हैं, केवल उनकी तकदीर चमकीली थी ऐसी बात नहीं है। उनकी परिस्थितियाँ ऐसी थीं, या उनके माँ-बाप ऐसे थे, ऐसी बात नहीं है। वह सब केवल इस चित्त की वृत्ति के आधार पर हुआ है। तुम भी दुनिया को जीतना चाहते हो, मगर अपने आपको नहीं जीत सकते। इसके पहले ही मर जाते हो। सबका वही हाल है, क्योंकि मन समर्थ नहीं है। हम चाहते हैं कि मरने के पहले कुछ ऐसा कर जाएँ जैसा बहुतों ने किया। बच्चे लोग भी सोचते हैं, जिन्दगीभर सोचते ही रहते हैं। सब लोग सोने से पहले कल्पनाओं के पंख पर उड़ते ही होंगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह के अलावा मनुष्य जीवन में कल्पनाएँ भी हैं। कल्पनाओं के पंख कितनी दूर पहुँचा देते हैं! लेकिन जिस दिन हमलोगों की आखिरी घड़ियाँ आती हैं उस वक्त लगता है, 'क्या कुछ नहीं सोचा था, मगर कुछ भी नहीं हुआ।' विचारों की समर्थता तथा कर्म की व्यवस्था, दोनों में दूरी क्यों है? इस दूरी का कारण है इनकेपेबल माइण्ड, असमर्थ मन।

ध्यान का अभ्यास और अनुभव

अपने मन को तीव्रग्राही बनाने के लिए, संवेदनशील बनाने के लिए अगर योग साधना को हम ठीक तरह से करें तो बहुत आगे बढ़ सकते हैं। अनेकों लोग योग साधनाएँ करते हैं, अपने आपको भूलने के लिए करते हैं, सिद्धि प्राप्त करने के लिए करते हैं, लेकिन योग साधना का सबसे उत्तम लक्ष्य जो मेरी समझ में आता है और जो गुरुजनों से सुनने को मिला है वह यह कि मनुष्य अपने अंदर और बाहर निरंतर जाग्रत रहे। उसकी सतर्कता, उसकी सजगता, उसकी चैतन्यता बढ़ती जानी चाहिए। अन्दर की ओर झाँके तो अन्दर में चैतन्य रहे। बाहर की ओर झाँके तो बाहर चैतन्य रहे। न अंदर में अन्यमनस्क रहे, न बाहर में। इसलिए कबीरदास ने एक पद्य लिखा है, आपने सुना होगा– *जाग जुगत सो रंगमहल में*। साधक से कहा जाता है कि तुम अपने रंगमहल में, अपने अंतरंग जीवन में जागते रहना, सोना नहीं, बेहोश नहीं होना। अब कैसे जागना चाहिए?

कई तरीकों से जागा जा सकता है। इसके लिए कोई एक युक्ति लो, कोई तरीका लो। जब तुम बिना युक्ति के ध्यान करते हो नींद आ जाती है, बेहोश हो जाते हो। आँख बंद करके एक-दो घंटे बैठ जाते हो, पूछते हैं, कहाँ गये थे भाई, क्या पता चला, तो कहते हो कुछ नहीं। अरे! यह कोई ध्यान है, यह तो तुम नींद में चले गये। एक बार मैं भी आठ घंटे बैठ गया, आँख बंद हुई, मैंने सोचा समाधि लग गयी। गुरुजी को बताया तो बोले, तुम सो गए थे। बहुत सारे लोग बोलते हैं कि स्वामीजी, पूजा-पाठ करते समय बहुत आनंद आया, दो घंटे बीते कुछ पता नहीं चला। हम कहते हैं, तब तो तुम गये।

जाग्रत अवस्था में बाहर का सब पता चलता है और ध्यान की अवस्था में अंदर का सब पता चलता है। बाहर के विषय कौन-कौन से हैं? स्पर्श, रूप, रस, गंध, शब्द – ये पाँच बाहर के विषय तुम्हें इन्द्रियों के द्वारा मिलते हैं। अगर तुम्हारी इन्द्रियाँ बिगड़ जायें तो विषयों का अनुभव नहीं होगा। कान न हो तो शब्द सुनाई नहीं देंगें, आँख अंधी हो तो रूप नहीं दिखाई देगा। इसी प्रकार ध्यान की अवस्था में धीरे-धीरे अंतरंग विषय भी दिखाई पड़ने शुरू होते हैं। वह शब्द जो इन्द्रियों के द्वारा नहीं, बिना इन्द्रियों के भी सुनाई देता है। इसे कहते हैं दिव्य श्रवण। इसी तरह दिव्य स्पर्श होता है। कोई तुम्हारा हाथ नहीं छूता, कोई तुम्हारा शरीर नहीं छूता, पर तुम्हें लगता है कि कोई तुम्हें छू रहा है। दिव्य दृष्टि में आँखें बंद हैं, मगर सब दिखलाई दे रहा है। एक सूफी सन्त ने कहा है कि जब आँखें बंद हो जाती हैं तब इतने रंग दिखलाई देते हैं, तुम्हें क्या बतलाऊँ। आँख बंद करके जो रंग-रूप दिखलाई देते हैं वह दिव्य रूप हुआ। रस, गंध, शब्द आदि पाँच विषय बराबर ध्यान की अवस्था में दिखलाई देते हैं। ध्यान शून्य अवस्था नहीं है। कुछ पता नहीं चले, वह भी ध्यान नहीं है। अन्धकार में चले जाना ध्यान नहीं, अपने को भूलना भी ध्यान नहीं है। दिव्य अनुभव का होना ध्यान है।

दिव्य गंध, दिव्य शब्द, दिव्य रूप–ध्यान में इनका अनुभव होता है, ऐसा महात्माओं ने बहुत बार कहा है। दिव्य शब्द के बारे में मीराबाई कहती है–'सुनी री मैंने हरि आवन की आवाज।' यह बाहर वाली नहीं, अन्दर वाली आवाज है। यह तो दिव्य शब्द के बारे में कहा गया है, अब दिव्य रूप के बारे में कहते हैं। कृष्ण

और गोपियाँ नृत्य करते हैं। बिना आँख के दिखाई पड़ रहे हैं, यह दिव्य रूप हुआ। इस बारे में एक पद्य आप लोगों को बताते हैं–

कान्हा-गोपी नृत्य करत हैं, चरन-वपुहि बिना ।
नैन बिना 'दरियावा' देखे, आनन्द-रूप घना ॥

लोग समझते हैं यह साधारण गीत है, पर यह निर्गुण के बारे में है। जब ध्यान की अवस्था में साधक बैठते हैं, उस समय कई अवस्थाओं से गुजरते हैं। जोरों से बरसात हो रही है, जैसे कि सावन के महीने में होती है। मेंढ़क की आवाज, मोर की आवाज, यह सब ध्यान में सुनाई देती है। जिन्होंने गुरु ग्रंथ साहब और कबीर के पद्यों का अध्ययन किया है उन्हें मालूम होगा कि ध्यान करते समय ढ़ालों की आवाज सुनाई देती है, झींगुर की, करताल की आवाज सुनाई देती है। चिड़ियों की चूँ-चूँ की आवाज सुनाई देती है, डमरू-मुरली की आवाज सुनाई देती है। बादल में बिजली चमकती है। यह सब अंदर के अनुभव हैं। जिस विषय पर मैं आप लोगों को बोल रहा हूँ, उस विषय पर महात्माओं ने पद्य लिखे हैं जिन्हें आप रोज गाते हैं। यह सब बाहर की चीज नहीं, अंदर की चीज है। ध्यान की अवस्था में निरंतर अनुभव होते रहते हैं। और यह अवस्था एक-दो बार नहीं, हजारों बार होती है। ध्यान की अवस्था में अनुभव का होना जरूरी है। ध्यान का मतलब शून्य अवस्था में आना नहीं है। तुम कहो कि मैं ध्यान करता हूँ या ध्यान करती हूँ, मुझे बराबर अनुभव होते रहता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारा चित्त अंदर में बिल्कुल जाग्रत है।

योग में ध्यान की जो अवस्था है, इसे किसी भी तरह से पूर्ण करने का प्रयत्न करो। यह केवल ईश्वर की उपासना नहीं, यह केवल अपने को भुलाना नहीं, यह कोई धर्म का मार्ग नहीं, बल्कि यह हर व्यक्ति की मानसिक साधना है। इस मन को धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति में लाना पड़ेगा जिसको हम समर्थ मन कहेंगे। जब आप समर्थ हो जायेंगे तब मैं समझता हूँ कि आप अपनी शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक विडम्बनाओं एवं दु:खों से जरूर ऊपर उठ जायेंगे। आज हम जिस युग में जी रहे हैं, मैं सिर्फ कुमारधुबी की बात नहीं बोल रहा हूँ, पूरी दुनिया की बात बोल रहा हूँ, इसमें मन की बहुत उपेक्षा की गई है। आपको गुस्सा आया, आपको चिन्ता हुई, कोई परेशानी हुई, घर में झगड़ा हुआ तो सिनेमा देखकर आ गए या थोड़ी शराब पीकर आ गये या कोई दवा खा ली। ऐसे कई उपाय हैं मन की उपेक्षा करने के, मगर तुम यह क्यों नहीं समझते कि ये जो परिस्थितियाँ आ रही हैं ये सब मन की क्वालिटी पर निर्भर करती हैं। इस क्वालिटी को क्यों नहीं सुधारा जाए? मन को क्यों नहीं विकसित किया जाए? आखिर मनुष्य कितने दिन तक मन को दवाइयाँ देकर सुलाएगा?

–4 अक्टूबर 1979, कुमारधुबी, झारखण्ड

गीता में प्रत्याहार की साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन का विषाद दूर करने के लिए उसे कर्त्तव्य रूप में कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं और समझाते हैं कि जिस मोह के कारण वह शोकमग्न हुआ है, उसका मूल कारण आसक्ति है। जब आसक्ति द्वारा मोह प्रबल बन जाता है, तब बुद्धि भ्रमित हो जाती है और मनुष्य अपने कर्त्तव्य और धर्म को भूल जाता है। उसका मन विचलित हो जाता है, मन की शान्ति समाप्त हो जाती है। जब मन विचलित और अशान्त हो जाता है, तब आदमी निकम्मा बन जाता है। वह न तो कर्मों को सही तरीके से सम्पन्न कर सकता है, न सही चिंतन को अपना सकता है, न ही सही बुद्धि से कोई निर्णय ले सकता है। इसलिये श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि तुम अपना कर्त्तव्य निभाते रहो और अपने मन को संभाल कर रखने का प्रयास करो।

अर्जुन पूछता है कि भगवान, मन को संभालने का क्या तरीका है। भगवान उसे बतलाते हैं कि कामनाओं और वासनाओं को कम करके, और मन को राग, भय एवं क्रोध से मुक्ति दिलाकर मन को संभाला जाता है। अर्जुन फिर पूछता है कि राग, भय, क्रोध और इच्छाओं के निराकरण के लिए कौन-सी विधि है? तब भगवान उसे प्रत्याहार के बारे में बतलाते हैं–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.58॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.61॥

'जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को अपने कवच के भीतर समेट लेता है, वैसे ही जब पुरुष भी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा देता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। अभ्यासी को चाहिए कि वह सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके, समाहित चित्त हुआ मेरे पारायण होकर ध्यान में बैठे। जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।'

आपको वह प्रसंग मालूम होगा जब गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा ले रहे थे। उन्होंने पेड़ पर एक मिट्टी की चिड़िया को रखकर अपने शिष्यों को कहा कि संधान करके चिड़िया की आँख को तीर मारना है। वे एक-एक करके शिष्यों को बुलाते गये। हर एक से पूछते गये, 'तुमने संधान किया? बताओ, क्या देख रहे हो?' गुरु द्रोणाचार्य विद्यार्थी के उत्तर के आधार पर उसे सफल या विफल

घोषित कर देते थे। प्राय: सभी शिष्यों ने कहा कि हमें चिड़िया, उसके चारों ओर फल-फूल-पत्ते, आस-पास खड़े बंधु-बांधव, आसमान में उड़ते बादल, सभी कुछ दिखलाई दे रहा है। उनका यह उत्तर सुनकर गुरु द्रोणाचार्य ने उन्हें फेल कर दिया। केवल एक चेला उत्तीर्ण हुआ, जिसने कहा कि मुझे कुछ नहीं, केवल चिड़िया की आँख दिखलाई दे रही है।

इस घटना के माध्यम से गुरु द्रोणाचार्य यह जानना चाह रहे थे कि उनके विद्यार्थियों में कितनी मानसिक एकाग्रता है। उन्हें मालूम था कि जिसका मन स्थिर, केंद्रित, एकाग्र और शान्त है, उसका निशाना अचूक होगा। इसलिए उन्होंने केवल विद्यार्थियों के उत्तर से ही जान लिया कि उनका निशाना सही होगा या गलत।

प्रत्याहार के सोपान

लोग आँखों को बंद करके ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं, लेकिन असली ध्यान आँखों को खोलकर मन को एकाग्र रखते हुए होता है। हमारे गुरुजी ने बचपन में हमसे एक बात कही थी जो हमें आज भी याद है, 'देखो निरंजन! न तो हिमालय की कंदराओं में शान्ति है और न ही मुंगेर के बाजार में कोलाहल। जो कुछ है वह तुम्हारे

भीतर है। अगर तुम्हारा मन स्थिर और शान्त रहेगा, तो मुंगेर बाजार के बीचोबीच भी तुम्हें कोई शोरगुल नहीं सुनाई पड़ेगा। अगर सुनोगे भी तो विचलित नहीं होगे। लेकिन अगर तुम्हारा मन अस्थिर, विचलित और अशान्त है, तो हिमालय की कंदराओं और गुफाओं में भी उसे शान्ति नहीं मिलने वाली है। वहाँ पर भी वह उन्हीं कामनाओं और वासनाओं से पीड़ित होगा, जो उसे यहाँ पीड़ा दे रही हैं। इसलिए, अपने मन को संभाल लो।'

श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं कि इस अभ्यास द्वारा तुम्हारे जीवन में जो मोह और दु:ख के कारण हैं, उन्हें तुम जान पाओगे। राग, भय, क्रोध एवं वासना ही मोह और दु:ख के कारण हैं। ये ही तुम्हारे मन को विचलित करते हैं।

योगदर्शन में एक शब्द आता है, 'प्रत्यय'। प्रत्यय का अर्थ होता है मन में एक बीज का पड़ना। जैसे हम धरती में बीज को बोते हैं, वैसे ही जब मन में कोई विचार, संस्कार, चिंतन या व्यवहार प्रवेश करता है, तब प्रत्यय कहलाता है। जो भी ज्ञान मनुष्य को प्राप्त होता है, वह एक प्रत्यय के रूप में, एक स्मृति के रूप में होता है। आप यहाँ पर आज सत्संग में आए हैं, बाद में चले जाएँगे। लेकिन आपको यहाँ की कुछ चीजें याद रहेंगी, क्योंकि वह जानकारी एक प्रत्यय के रूप में आपके मन में स्थित हो गई है। इसी प्रकार हमें इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के बारे में जो जानकारी प्राप्त होती है, वह जानकारी हमारे मन में प्रत्यय रूप में विद्यमान हो जाती है और वही मन को विचलित करती है। वही चीज बार-बार सामने आती है। दु:ख याद आता है, सुख भी याद आता है। चाहे दु:ख की स्थिति हो या सुख की, दोनों अवस्थाओं में ही मन अशान्त हो जाता है। इसलिये भगवान कहते हैं कि सबसे पहले प्रत्याहार द्वारा अपने मन को शान्त करो।

कायास्थैर्यम्—योग कहता है कि प्रत्याहार की सिद्धि को धीरे-धीरे प्राप्त करना है। सबसे पहले अपने शरीर को स्थिर बना दो, क्योंकि जब तुम्हारा शरीर शान्त हो जाएगा तब शरीर की इन्द्रियाँ भी धीरे-धीरे शान्त हो जाएँगी। इसलिए प्रत्याहार की पहली अवस्था को हम लोग कहते हैं, 'कायास्थैर्यम्' अर्थात् शरीर की स्थिरता को प्राप्त करना। शान्ति पाठ के समय आपसे कहा जाता है न, शरीर को शान्त और स्थिर बना लीजिए। लेकिन बहुत-से लोग उस दौरान भी अपने शरीर को हिलाने के फेर में रहते हैं, तीन-चार मिनट के लिए भी शरीर को स्थिर करना सम्भव नहीं हो पाता है।

कायास्थैर्यम् को सिद्ध करने के लिए शरीर को मूर्तिवत् बना दो। एक मिनट से शुरू करो, फिर उस अवधि को धीरे-धीरे दो, तीन, चार, पाँच, दस, पन्द्रह, बीस मिनट तक बढ़ाओ। जैसे-जैसे शारीरिक स्थिरता की अवधि बढ़ेगी और इन्द्रियों का सम्पर्क संसार से टूटेगा, वैसे-वैसे वे भी शान्त हो जाएँगी। यही बात श्रीकृष्ण ने आगे कही है कि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि, उसका मन

शान्त और स्थिर हो जाते हैं। इन्द्रियों को पकड़ने का जो माध्यम है, वह है शरीर। इसलिए शरीर से ही शुरुआत हो।

श्वास-नियंत्रण–उसके पश्चात् आता है श्वसन प्रणाली पर नियंत्रण। श्वास मन की स्थिति को दर्शाती है। जो व्यक्ति शान्त और स्थिर है, अगर आप उसकी श्वास को देखोगे, तो वह धीमी, लम्बी और गहरी होगी। अगर व्यक्ति उत्तेजित है, तो श्वास भी उत्तेजित हो जाएगी। अगर उत्तेजना या आक्रोश के समय हम अपनी श्वास को नियंत्रित कर पाते हैं, तो आक्रोश वहीं पर रुक जाएगा। भय की अवस्था में भी श्वास की गति तीव्र हो जाती है। अगर कभी भयभीत होते हो और देखते हो कि श्वास तेजी से चल रही है, तो श्वास को धीमी कर दो। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट लम्बी और गहरी श्वास लो। तुम देखोगे कि मन का भय समाप्त हो जाएगा।

हमारी संस्कृति में इन सब चीजों के बारे में स्पष्ट रूप से बतलाया गया है, लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। लोग सोचते हैं कि ये सब व्यावहारिक चीजें नहीं हैं, केवल दर्शन है। इसी गलतफहमी को दूर करने के लिए हम बार-बार कहते हैं कि हम गीता को धर्मग्रन्थ नहीं, जीवन का ग्रन्थ मानते हैं। इसमें जीवन जीने की विधि स्पष्ट रूप से बतलाई गई है।

अन्तर्मौन–श्वास नियंत्रण प्रत्याहार का दूसरा चरण हुआ। जब हम शरीर और श्वास की गतिविधियों को स्थिर और शान्त कर पाते हैं, तब फिर मन में प्रवेश करते हैं। मन को पकड़ने का जो तरीका है, वह है विचारों के द्वारा। अपने मन में आने वाले विचारों का साक्षी बनो, उनको देखो। उनके बारे में सोचो मत, केवल द्रष्टा बनो। मन में जो भी चिंतन हो रहा है, जो भी विचार आ रहा है, उसे देखते जाओ।

विचारों को नियंत्रित करने की इस विधि को अन्तर्मौन कहते हैं। इस विधि द्वारा जब विचार शान्त हो जाते हैं, तब भावनाओं को देखा जाता है। जो भावनाएँ उमड़ती हैं, उनको भी द्रष्टा बनकर शान्त किया जाता है।

जैसे एक बालक मचलता है तो उसकी माँ उसे गोदी में बैठाकर उसके सिर को सहलाते हुए कहती है, 'बेटा! सो जा, आराम कर।' वैसा ही कार्य हमें अपने मन के साथ करना होता है। लोग मन के साथ संघर्ष करते हैं। लेकिन योग कहता है कि मन के साथ संघर्ष नहीं, बल्कि मित्रता करो। तुम मन को अपना दास बनाना चाहते हो, पर अभी तो वह तुम्हारा स्वामी है। स्वामी को तुम दास बनाना चाहते हो, नियंत्रित करना चाहते हो, यह कैसे सम्भव है? इसीलिए आज तक प्रयास करते हुए भी कोई अपने मन को वश में नहीं कर पाया है। सब अपने मन के साथ कुश्ती करना चाहते हैं, इसीलिए सब मात खाते हैं। भगवान कहते हैं कि नहीं, बस इन्द्रियों को स्थिर कर दो। एक बार जब इन्द्रियाँ और मन स्थिर हो जाते हैं, तब तुम राग, भय, क्रोध और वासनाओं के कुप्रभावों से मुक्ति पाओगे। एक बार जब इनसे मुक्ति हो जाती है, तब जीवन में कोई कलह नहीं उत्पन्न होता।

कामना की कड़ी

तब अर्जुन पूछता है, 'भगवान! आप कहते हो कि जब इन्द्रियों का सम्पर्क विषयों के साथ होता है, तब मन भ्रमित हो जाता है। यह कैसे घटित होता है, थोड़ा समझाइये।' इसके उत्तर में भगवान कहते हैं–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥2.62॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥2.63॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण समझा रहे हैं कि इन्द्रिय तथा इन्द्रिय-विषयों में जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है, वह किस प्रकार मनुष्य को विचलित कर सकता है। विषयों का चिंतन करने से व्यक्ति में विषयों के प्रति आसक्ति हो जाती है। उदाहरण के तौर पर किसी कार को देखते हो, वह अच्छी लगती है, मन में सोचते हो कि कार खरीदने का समय आ गया है। आँखों ने एक पदार्थ को देखा। देखने के बाद मन में एक आकर्षण उत्पन्न हुआ। बाद में वह आकर्षण कामना का रूप ले लेता है, क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे पास पैसा वगैरह सब कुछ है।

मान लो इस बीच में बेटी की शादी निश्चित हो जाती है या घर में कोई बीमार पड़ जाता है। पैसा वहाँ खर्च हो जाता है। इससे मन में निश्चित रूप से एक बेचैनी उत्पन्न होगी कि मैंने जिस धन का गाड़ी खरीदने के लिए संग्रह किया था, अब वह धन

मेरे पास नहीं है। यहाँ पर एक निराशा आ जाती है, आक्रोश भी आ सकता है।

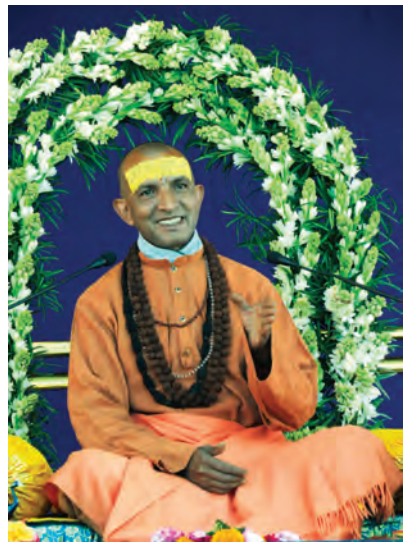

इसलिए भगवान कहते हैं कि विषय-सम्पर्क से कामना उत्पन्न होती है और उस कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। वे आगे कहते हैं कि क्रोध से अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न होता है। हम उस विषय के चिंतन में इतना डूब जाते हैं कि किसी और चीज का ख्याल ही नहीं रहता। मन में मूढ़ भाव उत्पन्न होने से स्मृति में भ्रम हो जाता है, जिससे अंत में बुद्धि का, ज्ञानशक्ति का नाश होता है। एक बार जब ज्ञानशक्ति का नाश हो जाए तब यही मान कर चलो कि मनुष्य अपनी स्थिति से गिर गया है, समाप्त हो गया है। आगे भगवान एक और चीज कहते हैं–

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥2.64॥

भगवान कहते हैं कि यह सब जरूर होता है, लेकिन जिस व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है, वह हर प्रकार के आकर्षण-विकर्षण, राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है। वह संसार के विषयों के बीच विचरण करते हुए भी आन्तरिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

इस संसार में राग और द्वेष हर वस्तु, हर व्यक्ति से जुड़ा रहता है। आज आप किसी व्यक्ति को पसंद करोगे, कल नहीं करोगे। व्यक्ति वही है। किसी अच्छी चीज को घर में खरीदकर लाओगे, उसको सजाकर रख दोगे, लेकिन उसके बाद उसकी धूल झाड़ना भी भूल जाओगे। जिस प्रिय वस्तु ने तुम्हारी नींद हराम कर दी थी, उसे अपने घर में ले आने के बाद उस पर ध्यान भी नहीं जाता। यही राग-द्वेष का खेल है। लेकिन जब एक साधक मन की स्थिरता के लिए प्रत्याहार की साधना को सिद्ध करता है, तब वह राग-द्वेष के प्रभावों से अपने आपको मुक्त कर लेता है।

सतत् सजगता

यहाँ पर एक और संकेत देते हुए भगवान कहते हैं कि जब तुम्हारा मन स्थिर हो जाए, तब उस स्थिरता को कायम रखने के लिए हमेशा प्रयास करो। नहीं तो क्या होगा?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥2.67॥

भगवान सावधान करते हुए कहते हैं कि एक चीज का ख्याल रखना। इन्द्रियों को हमेशा अपने वश में रखना। अगर एक भी इन्द्रिय तुम्हारे नियंत्रण से मुक्त हो जाती है, तो वह तुम्हारे मन का हरण कर सकती है। जैसे समुद्र में अगर थोड़ी-सी भी हवा रहे, तो वह हवा नाव को हिला देगी। उसी प्रकार अगर हम इन्द्रियों पर अंशमात्र भी नियंत्रण खो दें, तो वह पुन: मन को अपनी ओर खींच लेगी।

इन्द्रियों का स्वभाव शान्त नहीं, चंचल है। इसीलिए कृष्ण जी बार-बार कहते हैं कि ध्यान और सजगता के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करो। धर्म-संगत कर्म करते रहो और अपने मन को नित्य, परमात्म तत्त्व से जोड़कर रखो, ताकि तुम्हारे मन में यह भावना उत्पन्न हो कि मैं कर्ता और भोक्ता नहीं हूँ– *'नाऽहं कर्ता हरि: कर्ता, हरि: कर्ता हि केवलम्।'* मन को मुझ में लगाकर रखो। जहाँ पर तुम्हारे मन में *'अहं कर्ता'* की भावना आएगी, वहाँ पर तुम शान्त अवस्था से दूर हो जाओगे। जहाँ पर तुम यह सोचोगे कि मैं ही सब चीजें भोग रहा हूँ और सब कुछ कर रहा हूँ, वहीं पर तुम अशान्त हो जाओगे।

हारमोनियम या कोई अन्य वाद्य अपने आपको स्वयं नहीं बजा सकता। हारमोनियम को बजाने वाला कोई और होता है। अगर बजाने वाला सही तरीके से हारमोनियम बजाए, तो उससे मन को मुग्ध करने वाले सुन्दर स्वर निकल सकते हैं। उसी तरह से तुम्हारे मन में यह विचार आना चाहिए कि मैं केवल एक वाद्य हूँ, जिसे कोई और बजा रहा है। करने वाला मैं नहीं हूँ, प्रभु ही मेरे से सब कुछ करवा रहे हैं।

–'श्रीकृष्ण योग पद्धति' से उद्धृत

मन के परे जाना

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

योग का उद्देश्य शारीरिक आरोग्य, तन्दुरुस्ती, सुन्दरता या यौवन की प्राप्ति नहीं है। वे तो योग के पार्श्व-प्रभाव, साइड-इफेक्ट हैं। जैसे आधुनिक दवाइयों के साइड-इफेक्ट होते हैं, एस्पिरिन खाने से पेप्टिक अल्सर हो सकता है तो किसी दवाई से अंधापन या चक्कर आना शुरू होता है, वैसे ही योग का भी साइड-इफेक्ट होता है। फर्क बस इतना है कि योग के साइड-इफेक्ट हानिकारक होने के बदले फायदा ही कराते हैं। उसका शरीर और मन दोनों पर सकारात्मक परिणाम होता है। शरीर आरोग्यवान् बनता है, मन एकाग्र हो पाता है। बुद्धि तीक्ष्ण होती है और विवेक पक्का होने से सही निर्णय लेने की क्षमता मिलती है। व्यक्तित्व शालीन और आकर्षक बनता है। आत्मविश्वास बढ़ता है और अनेक ऐसे फायदे हैं, परन्तु वे सब योग का लक्ष्य नहीं, केवल योग के बाय-प्रॉडक्ट हैं।

योग का लक्ष्य बहुत ही सूक्ष्म और दूरगामी है। व्यक्ति को ध्यान या अपरोक्षानुभूति की उस अन्तिम अवस्था के लिए तैयार करना, यही योग का मूलभूत लक्ष्य है। आसनों से शरीर की शुद्धि होती है। दिल, फेफड़े, कलेजा, गुर्दे, पाचन संस्थान, रक्त और रक्त-संचरण प्रणाली, दिमाग, अंत:स्रावी ग्रंथियाँ इत्यादि सभी अवयवों की शुद्धि होती है। प्राणायाम से शुद्ध रक्त सारे शरीर में पहुँचता है और दिमाग के बन्द ताले भी खुलते हैं जो ध्यान के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

जब सभी अवयव सौ फीसदी ठीक काम करने लगते हैं, सभी नाड़ियों से प्राणों का निर्विघ्न संचरण होने लगता है, तब अनायास ही हमारा मन शान्त हो जाता है। आगे आनेवाले ध्यान के अभ्यास के लिए यह शान्ति आवश्यक है। इसके बिना ध्यान लगना असम्भव है। लोगों में भ्रम रहता है कि ध्यान लगने से मन शान्त होता है, परन्तु वास्तव में शान्त मन ध्यान की आवश्यकता है, परिणाम नहीं। जब तक मन चंचल है, तब तक उस एकाग्र चित्त अवस्था तक हम पहुँच ही नहीं सकते, मन केवल इधर-उधर भागते रहेगा।

आसन और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर और मन में संतुलन बना रहता है। इससे सभी शारीरिक और मानसिक क्रियायों में भी संतुलन बना रहता है। इनका परिणाम केवल शरीर तक सीमित नहीं होता। व्यक्ति की भावनाओं पर भी उनका गहरा असर पड़ता है। इन भावनाओं से हमारे सोच-विचार, प्रतिक्रियाएँ, ग्रहणशीलता और जीवन में होने वाली घटनाओं के विश्लेषण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आसन और प्राणायाम के अभ्यास से हमारी उच्छृंखल भावनाओं को काबू में लाना सम्भव है जिससे हमारे सारे व्यक्तित्व पर सकारात्मक असर होता है। हमारे शरीर में 72,000

नाड़ियाँ हैं, जिनसे प्राणों का संचार होता है। प्राणायाम के अभ्यास से इनकी शुद्धि होती है जिससे इनमें होने वाले प्रवाह में कोई भी बाधा या विघ्न दूर हो जाता है और शरीर में प्राणों की मात्रा बढ़ जाती है। सभी नाड़ियों में प्रमुख नाड़ियाँ तीन हैं–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।

इड़ा नाड़ी शरीर में स्थित सिम्पथेटिक सिस्टम से हमारी मानसिक गतिविधियों से सम्बन्ध रखती है और पिंगला नाड़ी शारीरिक गतिविधियों से। रीढ़ की हड्डी के निम्न भाग से निकलकर ये दोनों आपस में मिलती हुई सिर से लेकर पैरों तक सारे शरीर में प्राणों का संचार कराती हैं। इन दोनों के तालमेल में गड़बड़ी हो जाने से शारीरिक या मानसिक बीमारियाँ तो हो ही जाती हैं, लेकिन साथ में सुषुम्ना नाड़ी के जागने में भी बाधा पहुँचती है।

योग के अलग-अलग अभ्यास इन दोनों नाड़ियों में आपसी तालमेल बनाकर रखते हैं। इन दोनों के बीच सही तालमेल होने से सुषुम्ना जागती है और सुषुम्ना जागने के बाद ही हमारी चेतना के सूक्ष्म आयाम, विज्ञानमय कोश के अनुभव प्राप्त होने लगते हैं। विज्ञानमय कोश को जगाने का यही रहस्य है। जब तक इड़ा और पिंगला में समन्वय नहीं हो जाता है तब तक सुषुम्ना की जागृति नहीं हो सकती और उसके बिना विज्ञानमय कोश के अनुभव नामुमकिन हैं।

जागृति के स्तर

यह जागृति तीन स्तरों में होती है–प्रत्याहार, धारणा और ध्यान। आसन-प्राणायाम के अभ्यासों में पारंगत होकर इड़ा और पिंगला में समन्वय मिलाने के बाद देखा जाता है कि मन आसानी से अन्तर्मुखी बन सकता है। बाहर की दुनिया से अन्दर की दुनिया मे जाना आसान बन जाता है। प्राय: चेतना बहिर्मुखी रहती है और शब्द, स्वाद, दृष्टि, स्पर्श और गन्ध, इन ज्ञानेन्द्रियों से मिलने वाले संदेशों की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित होती है। वही चेतना अब इन संदेशों को पार कर अन्तर्मुखी बनती है। इसका मतलब है कि तुम इन क्रियाओं द्वारा बाह्य जगत् के संदेशों को स्वेच्छा से बन्द कर के अन्दर की दुनिया में प्रवेश कर सकते हो। इन्द्रियों को इस प्रकार अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार कहलाता है। इसमें पारंगत हो जाने के बाद ही आगे का रास्ता खुलता है। प्रत्याहार करने के अनेक उपाय हैं पर प्राणायाम सबसे उत्तम माना गया है। मन की प्राथमिक स्थिति तामसिक हो, राजसिक हो या सात्त्विक, इस मार्ग से प्रत्याहार करना सबसे उपयुक्त है।

महत् प्रयासों के बाद कभी-कभी कुछ ही क्षणों के लिए भी यदि यह असामान्य पुरुषार्थ आप कर पाते हैं तो अन्तर्मुखी बनी चेतना को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना पड़ता है और उसी को धारणा कहते हैं। नियमित अभ्यास से इन दो अंतरंग अभ्यासों में कुशलता मिलती है और धीरे-धीरे ध्यान अपने आप लगना शुरू होता

है। इन तीनों अभ्यासों में कोई निश्चित सीमाएँ नहीं हैं। एक में कुशलता मिलने पर अनायास ही अगले वाले में प्रवेश हो जाता है।

बहिरंग अभ्यासों को करते समय, खासतौर से प्राणायाम का अभ्यास करते समय अपने आप प्रत्याहार का अनुभव प्राप्त हो सकता है। प्रत्याहार की यह अवस्था बनी रहे तो अनायास वह धारणा में बदलती है और फिर आगे ध्यान लगता है। ध्यान लगना ही विज्ञानमय कोश के अनुभवों को प्राप्त करना है। और जब विज्ञानमय कोश के अनुभव आते हैं, तो धीरे-धीरे आनन्दमय कोश में अपने आनन्द-स्वरूप का दर्शन भी होने लगता है।

विज्ञानमय कोश का अनुभव

विज्ञानमय कोश हमारे अचेतन मन के गहरे स्तरों की छवि है। वह रंग, प्रकाश, प्रतीक और चिह्नों की दुनिया है। व्यक्तिगत अचेतन मन (इंडिविजुअल अनकाँशियस) सामूहित अचेतन मन (कलेक्टिव अनकाँशियस), जिसे हिरण्यगर्भ के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, उससे जुड़ा है। यहाँ पर सभी चीजों का ज्ञान विद्यमान रहता है। इस हिरण्यगर्भ में हर वस्तु या घटना जो भूत काल में हो चुकी है या भविष्य में होने वाली है, समायी रहती है। यह तो सारे विश्व का भण्डारगृह है जिससे हर व्यक्ति का अचेतन मन जुड़ा रहता है। इसीलिए विज्ञानमय कोश का अनुभव हो जाने के बाद हममें प्रज्ञा का उदय होता है, जिससे काल के चतुर्थ आयाम में हम पहुँचते हैं और भूत-भविष्य-वर्तमान के परे जाना सम्भव हो पाता है।

जब मन देश, काल और पदार्थ के परे जाता है, तब एक उच्च ज्ञान का उदय होता है। अचेतन मन की जादुई दुनिया कल्पना से यथार्थ में बदलती है। यह तो समस्त ज्ञान का अनन्त भण्डार है। रोजमर्रा के जीवन में होनेवाली सीमाएँ यहाँ पर नहीं होतीं। यह ज्ञान सार्वभौम है—देश, काल और पदार्थ की सीमाओं के परे है।

इस ज्ञान को अगर अपने पूरे स्वरूप में जानना हो तो तुम्हें अपने स्वयं का परिचय जानना होगा। परिचय माने तुम्हारा अतीत का ज्ञान, पुरखों का ज्ञान, विरासत का ज्ञान। हर व्यक्ति की वंश परम्परा होती है। मैं भारतीय नागरिक हूँ, लेकिन जरूरी नहीं की यही मेरा वंश है। धर्म, जाति, राज्य वगैरह जैसे ठप्पे हमने अपने आप पर इतना आरोपित किये हैं कि हम उनमें बन्ध गये हैं, उसके आगे हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहा।

सामाजिक परिस्थितियों के सामने झुककर हम उस साँचे में ढल जरूर जाते हैं, परन्तु हमारा अस्तित्व उससे कहीं ज्यादा है। स्वयं की इस खोज में हमें जाति, देश, धर्म की सीमाओं को पार करके अपने मूल परिचय तक पहुँचना होगा। हमारी वंश परम्परा क्या है? हमारे उन पूर्वजों के मत क्या थे? वे किन मंत्रों और कर्म-काण्डों का उपयोग करते थे? अपनी चेतना के स्तर को बदलने के लिए वे क्या किया करते थे?

भले ही आज तुम अमरीकी नागरिक हो, लेकिन हो सकता है कि तुम्हारे पूर्वज भारत के हैं। उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक, पेरू से अलास्का तक असंख्य जातियाँ रही हैं, जो समय और परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग गुट, मत, जाति, देश इत्यादि में एकत्रित हुए। धीरे-धीरे उनकी यह मूल पहचान लुप्त-सी हो गयी, लेकिन यह सब अचेतन मन में बसा रहा और इसका अचेतन मन पर असर भी पड़ता रहा।

उदाहरण के लिए भारत की एक जनजाति है संथाली, जो झारखण्ड में मिलती है। इनकी मानसिकता इसी देश की दूसरी जाति, नीलगिरि प्रान्त की टोडा जनजाति से बिल्कुल भिन्न है। यदि तुम्हें मन के गहरे स्तरों तक पहुँचना हो, तो अपने इस परिचय को जानना आवश्यक है। इससे पता लगेगा कि किन अभ्यासों से तुम्हें तुरन्त परिणाम मिलेंगे। हर जाति के अपने विशिष्ट मंत्र, औषधियाँ इत्यादि कर्मकाण्ड रहे हैं। जब तक वह जाति अपना अस्तित्व कायम रख सकी, तब तक उसके ये कर्मकाण्ड बरकरार रहे। उसका अस्तित्व मिट जाने के बाद, धीरे-धीरे उनके अभ्यास भी मिट गये। हमारे अचेतन मन की गहराइयों में वह बस एक यादगार बनकर रह गये। इन्हीं स्मृतियों को उजागर करने के लिए प्रतीक, मंत्र, रंग, वगैरह का उपयोग किया जाता है और इसी से चेतना के स्तरों को भी बदला जा सकता है।

मन, बुद्धि, तर्क-वितर्क आदि के विकास के लिए हमें समाज में सिखाये जाने वाली विद्याएँ और कलाएँ काफी हैं। जब तुम्हें उनके परे विज्ञानमय कोश के गूढ़ और अप्रकट दुनिया में जाने की इच्छा होगी तब तुम्हें अपनी प्रज्ञा को जगाना पड़ेगा और अपनी मूल प्रकृति को पहचानना होगा।

मूल स्वभाव और प्रज्ञा

यद्यपि अपने मूल स्वभाव और प्रज्ञा में अनेक समानताएँ हैं, वे दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। वास्तव में वे एक ही वस्तु के दो अलग पहलू हैं। जो चेतना के पाशविक स्तरों में मूल स्वभाव है वही चीज चेतना के उच्च स्तरों में प्रज्ञा के रूप में प्रकट होती है। पशु-पक्षियों पर गौर करने पर देखते हैं कि उन्हें आने वाली विपत्तियों का स्पष्ट पूर्वाभास होता है। अब इसे मूल पाशविक स्वभाव कहोगे या प्रज्ञा? जीव अपने आपको बचाने के लिए रास्ता निकाल लेता है जिसे मनोविज्ञान में 'सर्वायवल इंस्टिंक्ट' भी कहते हैं। इसी को जब हम विकसित करते हैं तो प्रज्ञा का उदय होता है।

आज हमारे सामने सबसे बड़ी दिक्कत है कि हमारा यह मूल स्वभाव कमजोर पड़ गया है। आज की दुनिया में हम खोपड़ी का इतना ज्यादा उपयोग करते हैं कि उन स्वभावों को हमने नजरअंदाज ही कर दिया है। उनसे हमें अपना नाता फिर से जोड़ना होगा। आज विचार-तर्क-बुद्धि के कटघरे में इस मूल स्वभाव की बलि चढ़ चुकी है और इसी के कारण हमारी मूल प्रकृति में दोष आ गये हैं।

विज्ञानमय कोश में जो चेतना प्रकट होती है वह मन के परे है। मन के द्वारा उसे पाया नहीं जा सकता। मन और बुद्धि से तुम बाहर की दुनिया में होने वाली घटनाओं का सामना कर सकते हो, लेकिन विज्ञानमय कोश तक पहुँचने के लिए इस मन को उखाड़कर फेंकना पड़ता है। मन और बद्धि तुम्हें मनोमय कोश तक साथ देते हैं, उसके बाद वे तुम्हारे रास्ते का रोड़ा बन जाते हैं।

मन को लाँघने पर ही दिव्य प्रज्ञा का विस्तार होता है। जब तक तुम तर्क की दुनिया में हो, तब तक प्रज्ञा प्रकट नहीं होगी। और प्रज्ञा का कोई तर्क-कायदा-कानून नहीं होता, वह तो केवल गहरी भावना के रूप में प्रकट होती है। वह बहुत ही स्पष्ट दृष्टांत में प्रकट होती है मानो सचमुच वह घटना घट रही हो। एक बार हमारे गुरुजी से मिलने एक महिला आयी। जैसे ही वह कमरे में अन्दर आयी, मुझे वह सफेद रंग की साड़ी पहने नजर आयी यद्यपि उसने लाल रंग की साड़ी पहन रखी थी। क्षण मात्र के लिए वह दृश्य रहा। मैंने भी उसे खास महत्त्व नहीं दिया। कुछ दिनों बाद पता चला कि उसके पति का अकस्मात् देहान्त हुआ और वह विधवा हो गयी। मेरे आश्चर्य का अनुमान आप लगा सकेंगे, जब दो या तीन हफ्ते बाद वही महिला गुरुजी के दर्शन के लिए सफेद साड़ी पहन कर आयी। इसी को प्रज्ञा कहते हैं।

पहले तो प्रज्ञा प्राय: केवल नकारात्मक घटनाओं को दर्शाती है। बीमारी, मृत्यु, विनाश, विपदा जैसी चीजों का ही पता लगता है। राजयोग सूत्रों के विभूति पाद में महर्षि पतंजलि ने इसपर स्पष्ट टिप्पणी की है। सिद्धियों के उपयोग या यूँ कहिए उनके दुरुपयोग से बचने के लिए कहा गया है। उन्होंने तो सिद्धियों को योग मार्ग में बाधा माना है– *ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय:।*

सामान्य लोगों के लिए तो सिद्धियों की प्राप्ति एक बड़ी उपलब्धि है जिसका डंका वे दुनिया में पैसा और शोहरत कमाने के लिये बजाना चाहेंगे। मगर आध्यात्मिक पथ पर वे घोर बाधायें प्रस्तुत करती हैं। यदि इनका उपयोग किया जाए, तो कुछ समय में वे लुप्त हो जाती हैं और साधक को कंगाल छोड़ देती हैं। विज्ञानमय कोश को जगाते वक्त न चाहने पर भी साधक को विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, क्योंकि उस समय साधक के अन्दर की प्रतिभा प्रकट होती है।

मन और बुद्धि के परे

विज्ञानमय कोश को जगाने के लिए मन और बद्धि को लाँघना पड़ता है। इसके लिए सबसे आसान तरीका है कि तर्क को चुनौती देने वाले अभ्यासों को अपनाओ। योग और तन्त्र के अनुसार यह तरीका काम भी करता है। इसीलिए सभी गूढ़ तन्त्रों में मंत्र, गायन, नृत्य इत्यादि का समावेश होता है। सूफी मतों में तो गोल-गोल घूमने वाले दरवेश और फकीरों का प्रादुर्भाव इसी कारण से है। दुनिया के हर मत, हर जाति ने इस विद्या का उपयोग अनादि काल से किया है। इन चीजों पर अब गौर करना जरूरी हो गया है।

यदि तुम्हें अपने अतीत का ज्ञान नहीं भी है, तब भी योग के इन अभ्यासों के उपयोग से फायदा तो अवश्य ही होगा। आखिर योग एक सार्वभौम विद्या है, सारी मानव जाति की विरासत है। और दुनिया में जितनी भी गूढ़ कलाएँ और तन्त्र हैं, वे कहीं-न-कहीं योग से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए माना गया है कि आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के नियमित अभ्यास से निश्चित ही विज्ञानमय कोश को जगाया जा सकता है और मन के परे एक नए आयाम में प्रवेश किया जा सकता है।

–'योग सत्संग' से उद्धृत

मानव का लक्ष्य है पूर्णता प्राप्त करना और पूर्णता प्राप्त करने का साधन है–ध्यान।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

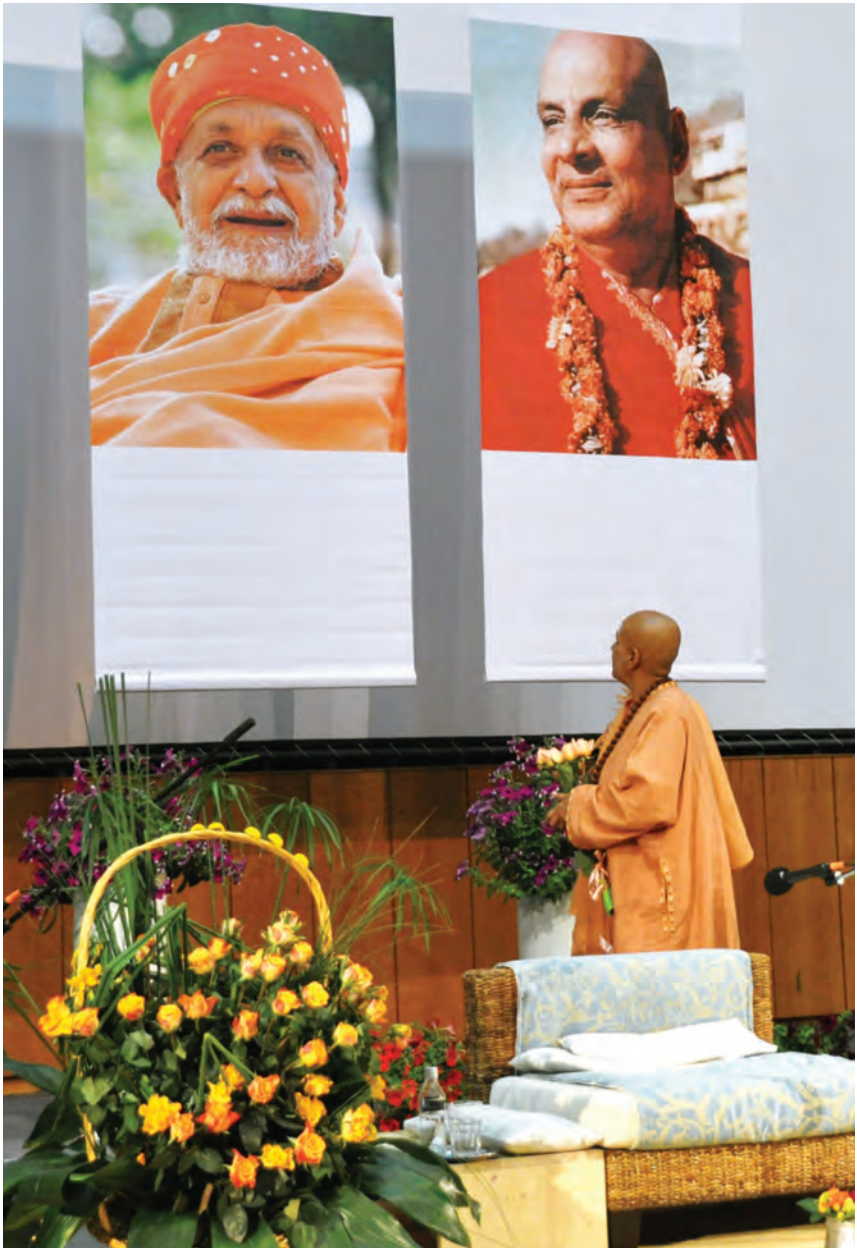

लखपति और तीन भिखारी

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

किसी शहर में एक नेक और दयालु लखपति रहता था। एक बार शहर के तीन भिखारियों ने उसकी मदद लेने की सोची। पहला भिखारी लखपति के पास पहुँचा और बोला, 'सरकार, मुझे पाँच रुपये चाहिए। मुझे जल्द-से-जल्द दिलवा दीजिये।' लखपति को उसकी गुस्ताखी पसंद नहीं आई। 'मैं क्या तुम्हारा कर्जदार हूँ जो तुम इतने रौब से मुझसे रुपये माँग रहे हो? एक भिखारी को इतने पैसे कैसे दे दूँ? यह लो दो रुपये और अपना रास्ता नापो!' वह भिखारी दो रुपये लेकर चलता बना।

दूसरे भिखारी ने लखपति के पास जाकर कहा, 'महाराज, मुझे पिछले कई दिनों से पेटभर भोजन नसीब नहीं हुआ है। कृपया मेरी कुछ मदद कीजिये।' उसकी यह फरियाद सुनकर लखपति ने पूछा, 'कितने पैसे चाहिए तुम्हें?' 'आप जो भी खुशी-खुशी दे दें महाराज,' भिखारी ने दीन स्वर में उत्तर दिया। 'यह दस रुपये का नोट रखो। इससे तुम तीन दिन तक बढ़िया, भरपेट भोजन कर सकते हो।' भिखारी ने दस रुपये का नोट लिया और लखपति को तहे-दिल से शुक्रिया अदा करते हुए चला गया।

अब तीसरे भिखारी की बारी थी। उसने आकर कहा, 'महाराज, मैंने आपके उज्ज्वल चरित्र और उत्तम गुणों के बारे में बहुत कुछ सुना है। इसलिए मैं आपके दर्शन के लिए आया हूँ। आप जैसे उदार और दयालु महापुरुष तो सचमुच धरती पर भगवान के अवतार होते हैं।' भिखारी की बातें सुनकर लखपति ने उसे बैठने के लिए कहा। 'तुम काफी थके-हारे लगते हो। यहाँ बैठकर पहले इत्मीनान से भोजन कर लो,' ऐसा कहकर लखपति ने अपने नौकरों को भोजन परोसने का आदेश दिया। जब भिखारी ने भरपेट भोजन कर लिया तो लखपति ने बड़े प्रेमपूर्वक पूछा, 'बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?'

'महाराज,' भिखारी ने उत्तर दिया, 'मैं तो केवल आप जैसे महापुरुष का दर्शन करने आया था। आपने मुझे यह स्वादिष्ट भोजन देकर पहले ही कृतार्थ कर दिया। आपसे अब और क्या माँगूँ? आपने मुझपर बिन कारण इतनी कृपा कर दी, भगवान आपका भला करें।' भिखारी की भावना से लखपति बहुत प्रभावित हुआ। उसने भिखारी से अनुरोध किया कि वह उसके पास ही रहे। उसने अपनी हवेली के परिसर में ही भिखारी के लिए एक अच्छी-सी कुटिया बना दी और जीवनभर उसकी देखभाल करता रहा।

भगवान भी इस नेक लखपति की तरह हैं। तीन श्रेणियों के भक्त उनके पास जाते हैं, अलग-अलग कामनाएँ और प्रार्थनाएँ लेकर। पहला है वह लोभी मनुष्य जो

दम्भ, अहंकार और वासनाओं से परिपूर्ण है। वह भगवान के सामने अनेक सांसारिक भोगों की माँग रखता है। इस मनुष्य की चाहे जितनी निकृष्ट, तुच्छ वासनाएँ रही हों, उसमें कम-से-कम भगवान के समीप आने की सद्बुद्धि तो थी, यही सोचकर ईश्वर उसकी कामनाओं का एक अंश पूरा कर देते हैं। पर वे भोग भी ज्यादा देर नहीं टिकते, उसी तरह जिस तरह पहले भिखारी के दो रुपये शाम होते-होते खत्म हो गए।

दूसरे प्रकार का भक्त अपने दु:खों एवं कष्टों की निवृत्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता है। वह पहली श्रेणी के भक्त से बेहतर है क्योंकि वह भगवान की मर्जी को मानने के लिए तैयार है। भगवान ऐसे भक्त के सभी दु:खों का निवारण कर देते हैं और साथ ही अनेक प्रकार की धन-सम्पत्ति एवं सुख-समृद्धि भी प्रदान करते हैं।

तीसरे प्रकार का भक्त ज्ञानी है, जो भगवान के स्वरूप और स्वभाव को भली-भाँति जानता है। वह ईश्वर से केवल यही कहता है, 'हे प्रभु, आप सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, आप सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् हैं। आप कृपा और करुणा के सागर हैं। आपकी जय हो!' वह क्या चाहता है? कुछ नहीं। लेकिन भगवान उसके त्याग, उसके निष्काम स्वभाव और उसके समर्पण-भाव से बहुत प्रसन्न होते हैं। इसलिए वे उसे स्वयं अपना भोजन कराते हैं, अर्थात् वे उसे अपनी पराभक्ति प्रदान करते हैं। इसके अलावा वे उसे अपने निजधाम, वैकुण्ठ में स्थान देते हैं। इसके बाद वह ज्ञानी-भक्त सदा-सदा के लिए भगवान के धाम में एक जीवनमुक्त ऋषि की भाँति निवास करता है।

योगक्षेमं वहाम्यहम्

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

वह तुम्हारी आत्मा ही है जो तुम्हारे समस्त क्रिया-कलापों का संचालन करती है। वह जो तुम्हारे जीवन में प्रवाहित होने वाली अक्षय शक्ति है, उसका दर्शन पाने के लिए मन, इन्द्रियों और वासनाओं के पर्दे को चीरकर तुम्हें अपने अन्तर में झाँकना होगा।

कार्य तो सरल है, पर विधि किसी को पता नहीं। गुरु हमें याद दिलाते हैं, पर शेष कार्य स्वयं साधक को ही करना होगा। जप, कीर्तन और इसी प्रकार की अन्य साधनाएँ नये संस्कारों का वपन करती हैं और पुराने संस्कारों को मिटाती हैं। निष्ठा, श्रद्धा और विश्वास से युक्त साधनाएँ तुम्हारे मन और इन्द्रियों को बदलती हैं और तुम्हारे भीतर अवस्थित ईश्वर के साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

वह प्रत्येक पदार्थ में निवास करता है। वह प्रत्येक पदार्थ की अन्तरात्मा है, पर पदार्थ उसे नहीं जानता। पदार्थ उसका शरीर है। यह अजर, अमर तत्त्व तुम स्वयं हो।

'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति'—परम पिता परमेश्वर का अपनी सन्तान के प्रति यह अचूक आश्वासन है कि वे अपने भक्तों का सदा कल्याण करते हैं और उन्हें आपत्तियों से मुक्त करते हैं। अल्प श्रद्धा, विश्वास और आस्था भी भक्त को अनेक संकटों और भविष्य के सम्भावित खतरों से सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त है। यदि वह विनीत भक्ति से ईश्वर का स्मरण करता है, चाहे वह दुरात्मा ही क्यों न हो, कल्याण को प्राप्त करता है।

ईश्वर सभी पर समान रूप से नित्य दयालु है। जो उसे चाहते हैं, उन्हें वह चाहता है। पतितों और परित्यक्तों का वह विशेष मित्र है। वह उद्धारक है, क्योंकि वह माया और काम की प्रबल तरंगों से हमारा उद्धार करता है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक है, क्योंकि वह हमें असत्य से सत्य की ओर, तमस् से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलता है। वह एक कुशल नाविक है, क्योंकि वह हमारी जीवन-नौका को मँझधार से निकाल कर लक्ष्य की ओर ले जाता है। इसलिए हमें न भयभीत होना चाहिए, न चिन्ता करनी चाहिए। यह निश्चित है कि हमारी विभिन्न दुर्बलताओं और अयोग्यताओं के बावजूद हम उसके हाथों में सुरक्षित हैं। वह अपने सच्चे और विश्वासी भक्तों को आवश्यक सुअवसर और सुविधाएँ प्रदान करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

ब्रह्ममुहूर्त अथवा मध्यरात्रि के नीरव एकान्त में उसे हृदय से पुकारो। हृदय खोलकर उसके समक्ष रख दो। तुम्हारी सफलता निश्चित है। अपने निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हो जाओ। तुम्हें एक विचित्र आनन्द की अनुभूति होगी। अपने को अलमस्त बना देने वाले आनन्द में विलीन कर दो। तुमको एक ऐसा

नशा होगा, जो अन्तिम श्वास तक तुमको सदा आनन्दमय बनाये रखेगा। भला इस आनन्द की तुलना संसार के सारहीन आनन्द के साथ हो सकती है? जिसे एक बार भी इस दिव्य आनन्द की झलक मिल जाती है, उसके लिए संसार के समस्त सुख कोई मूल्य नहीं रखते। मीराबाई, भक्त नरसी, तुकाराम, रामकृष्ण परमहंस, आदि को उस आनन्द की प्राप्ति हुई थी। गृहस्थ जीवन से ऊब मत जाना। यही परम साधन है। तुम्हारे लिए जीवन के सभी क्षेत्र तीर्थ हैं, सभी कर्म ईश्वर की पूजा।

चिन्ता का कारण है परमेश्वर की महत्ता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता तथा दयालुता पर विश्वास का अभाव। यद्यपि हमें यह सब कह दिया गया है, पर हम इसे जानते भर हैं, मानते नहीं। लड़की सयानी हुई, लोक-भय बढ़ने लगा और चिन्ता सताने लगी। प्रार्थना भी करते जा रहे हैं, रातें भी जागते-जागते कट रही हैं। खैर शादी हो गई तो चैन की साँस ली, प्रभु को धन्यवाद दिया। देखा जाए तो चिन्ता के मूल में जीव का अहम् और उसकी तृष्णा छिपी हुई है। अहम् गया कि तृष्णा मिटी और चिन्ता गई। तो देवभक्त, प्रथम सत्य सुनो कि अज्ञान से अहम् आया, तृष्णा आई, चिन्ता लगी और जी दु:खी हुआ। अन्तिम सत्य भी सुनो कि ज्ञान से अहम् मिटेगा, तृष्णा मिटेगी, चिन्ता मिटेगी और जीव मुक्त होगा।

अत: आत्मा को अन्दर और बाहर से विश्वासमय बना कर रखो, पूर्णत: श्रद्धावान् बनो। अन्दर से भी हँसो और बाहर से भी। कर्म, धर्म और मर्म, तीनों को आनन्दमय बनाकर रखो। प्रभु को तुम्हारे योगक्षेम का पूरा खयाल है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥9.22॥

वे तुम्हारी तमाम जरूरतों से वाकिफ हैं। तुम्हें पुरुषार्थमात्र करना है। वह भी निष्काम भाव से और कर्त्तापन के अभिमान से पूर्णतया मुक्त होकर। जैसे घर की नौकरानी तुम्हारे घर का पूरा काम करते हुए भी अनासक्त रहती है, वैसे ही तुम्हें भी सभी काम अनासक्त होकर करने हैं। जैसे मकड़ी पूरा जाला अपने ही अन्दर से तान कर उससे अलग रहती है, वैसे ही सभी कर्मों को करते हुए भी पूर्ण मुक्त बने रहो। जब यात्री अपना भार रेलगाड़ी पर रख देता है, तब भारमुक्त रहकर भी भार को संग-ही-संग ले जाता है। तुम्हें भी तमाम कर्म प्रभु को आश्रय बनाकर करने पड़ेंगे। विभीषण की विनय सुन लो–

सुनहु देव चराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अन्तरयामी ॥
उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही ॥
अब कृपालु निज भगति पावनी। देहु सदा शिव मनभावनी ॥

जो जन परमेश्वर के आश्रित होकर कर्म करते हैं, वे फलाफल से निर्लिप्त रहते हैं। राज्य का अधिकारी तो राम है, परन्तु अहंकार ने उसे पदच्युत कर भरत को राजा मान लिया। लेकिन शुद्ध बुद्धि कहती है कि सब कुछ राम का है, मेरा नहीं; मैं प्रभु के आश्रित होकर अनासक्ति के देश में बैठकर कर्म करती रहूँगी। यही ब्रह्मकर्म, दिव्यकर्म या अकर्म है। तन्मयता और तल्लीनता आ जाय, तो पूरा जीवन यज्ञमय बन जाता है।

कहने का तात्पर्य यह कि तुम कर्मों को प्रभु की प्रेरणा और उनकी पूजा समझो, तथा उसे प्रभु के आश्रित जानो। जब-जब चिन्ता के बादल घिर आयें तब-तब विश्वासयुक्त विवेक से उन्हें हटाते रहना। हमारा और भगवान का आपसी सम्बन्ध आखिर क्या है? क्या कभी यह भी सोचा कि हमारे सन्ताप का कारण उन्हें भूल जाना ही है!

आओ, आज हम उनको जानें, पहचानें और पायें। निर्धन को धन के न होने का दु:ख रहता है, पर तभी तक जब तक उसे धन न मिले। जिस दिन उसे परम धन मिल जाता है, उसी दिन वह कह बैठता है– 'मैंने राम रतन धन पायो।' इसके बाद उसे धन के न होने का दु:ख नहीं होता।

पुत्रहीन को पुत्र न होने का दु:ख रहता है, पर तभी तक जब तक उसे पुत्र नहीं मिलता। जिस दिन उसे परम पुत्र मिल जाता है, उसी दिन वह कह बैठता है– 'सर्वस्व रामचन्द्र है, पुत्र, सखा और बान्धव मेरा।' इसके बाद उसे पुत्र, सखा और बान्धव के न होने का दु:ख नहीं होता।

निर्धन का धन, अन्धे की आँख, दु:खी का अवलम्ब, भूले की राह है वह। जिस दिन उसे पाया, उसी दिन से अभाव का खटकना बन्द हो जाता है।

पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है।
पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है॥

मुझे भी बहुत दु:ख होता था कि संसार में इतना दु:ख और कष्ट क्यों? क्या इस कष्ट का निराकरण नहीं कर पाऊँगा? एक दिन मुझे यह ज्ञान मिला कि 'संसार में न दु:ख है न कष्ट, सब कुछ हमारे मन में है। मन के दु:ख को दूर करने से संसार का कष्ट स्वाहा हो जाएगा।'

अगर तुम इस 'परम सत्य-बोध' को समझ सको तो फिर अपने मन को ही पहले ठीक करना होगा। मन के सुधरते ही तुम्हारे अन्तर की पीड़ा, जीवन का असन्तोष, वस्तुओं का अभाव तुरन्त चला जाएगा। '*मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:*'– यदि तुमने अपने मन को समझा लिया कि सच्चा बन्धु, सखा, माता, पिता और पति तो राम है, तब क्या तुम्हारा मन दूसरे बन्धु, सखा, माता, पिता या पति के लिए भटकेगा?

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत: ।
यस्मिन्स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते ॥6.22॥

आओ, और अधिक समझ लें। राम को अपना परम आश्रय, परम धन और परम प्रिय समझो। रोना तो उनके लिए, हँसना तो उनके लिए। सोना तो उनके लिए, जीना तो उनके लिए।

यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।

हम सब चिर वियोगिनी राधा हैं कृष्ण की। वह हमें मिला नहीं। तभी तो संसार का दु:ख हमें तप्त कर रहा है। क्या प्रभु से मिलने के बाद भी दु:खों की अनुभूति रहेगी? माँ की गोद में पुत्र निश्चिन्त हो जाता है, पति की गोद में पत्नी, कृष्ण की गोद में यह जगत्। आओ, निश्चिन्त बनो!

राम के लिए रोना सीखो। काम के लिए रोना दु:खदायी है। राम की चरण-सेवा सुख देती है और जीवन की विभीषिका को दूर हटाती है। काम की सेवा से ही मानसिक कष्ट होता है, जीवन में रोना लगा रहता है। राम अमर है, मर नहीं सकता। काम असत्य है, जी नहीं सकता। कामनाओं से दु:ख का जन्म होता है। यह लोक तो बिगड़ता ही है, परलोक भी बिगड़ जाता है। दु:ख से अपना जीवन तो रोता ही है, अपने परिवार का जीवन भी रोने लगता है। जरा हँसकर देखो, जगत् खिलखिला उठेगा।

हर काम में खुश होकर हँसना सीखो। मानसिक कष्ट ने हमें बहुत विदीर्ण कर रखा है। आज हम सब कुछ अपने परम सखा राम के चरणों में अर्पित करते हैं। हमें उनसे कुछ नहीं चाहिए। न हमारी लाज जा रही है, न हमें चीर चाहिए। न हमें कोई मारने आ रहा है, न हमें सहायता चाहिए। न कोई हमारा सर्वस्व छीन रहा है, न हमें नारायण चाहिए। हमें परम मधुर प्रेमा-भक्ति दो कि हम अणु-अणु में अपने परम सखा के दर्शन कर सकें, उसकी झाँकी देख सकें। जब हमें राधा के श्याम ही मिल गए तो संसार की तुच्छ वस्तुओं को माँगना मूर्खता ही होगी।

दु:ख का कारण मोह, राग और अज्ञान है। संसार का स्वभाव पहचान लो। राम की महिमा जान लो। सुख-दु:ख सब समझ लो। तब देखो कि दु:ख कैसे होता है? सारा संसार दु:खी है। सुखी तो वही है जिसका चित्त भगवद्सेवा में लग चुका है। जो संसार और भगवान, दोनों को निभाना चाहता है, वह हरदम खतरे में रहता है। सुखी बनना है तो मन के विचारों की दिशा में परिवर्तन करो। हर एक घटना के असली रहस्य को समझो, उस घटना के पीछे परमात्मा के विधान को समझो। जिसने राम के चरणों में अपने चित्त को भ्रमर की तरह लगा दिया है, जो राम के लिए जागता, उठता, बैठता, खाता-पीता और सोता है, उसे दु:ख हो ही कैसे सकता है? राम तो परमानन्द का आयाम है।

कभी श्याम के लिए दु:ख हुआ क्या? क्या कभी मीरा की तरह पीड़ा की वेदना से उर में दु:ख हुआ और आँखों से गंगा-यमुना बही? क्या कभी चैतन्य महाप्रभु की

तरह अखिल लोकपति कृष्ण का विरह मन में समाया? तो फिर संसार के लिए रोने से यदि तुम्हें संसार न मिला तो बुरी बात ही क्या? जब तुम बच्चे थे तो चन्दा की परछाई को पकड़ते थे। जब मृग रूप में जन्मे तो मरु-मरीचिका में प्यास बुझाने गये थे। और आज भी मनुष्य जन्म पाकर तुम छाया को ही पकड़ने की कोशिश कर रहे हो, जबकि मैं कह रहा हूँ कि सांसारिक कामनाओं में आनन्द नहीं, अनन्त दु:ख है।

तो उठो और अपनी भावनाओं को बदलो। अपने हृदय का प्रेम मनुष्य को नहीं, ईश्वर को दो। अपनी साधना और भाग-दौड़ मनुष्य के पीछे नहीं, ईश्वर के पीछे करो। छाया और हवा को पकड़ पाओगे? सब लोग हार गए हैं। इसलिए हमने छाया और हवा को छोड़ दिया है। हम अपने सखा को पाने जा रहे हैं। बदलो, स्वयं बदलो, प्रेम को बदलो, नेत्रों को बदलो। वाणी को बदलो। जिनसे तुम युग-युगों से दूर गिरे पड़े हो, उनको खोजो, क्योंकि वे तुम्हें खोजते हैं। युग-युगान्तरीय जीवन की व्यथा, देह की जलन, विरह के शोले, विनाश की वेदना, हानि का भय, प्रिय का दुराव—सब प्रभु के चरणों में चित्त लगाने से चले जायेंगे।

धन्य हैं वे जो यौवन और धन, विद्या और बुद्धि के रहते परम भागवत बन जाते हैं। जब तक शरीर जीर्ण नहीं हुआ है, इन्द्रियाँ सबल हैं, बुद्धि ठिकाने है और मृत्यु दूर है, तब तक यत्नशील रहकर मन्दिर तैयार कर लो। भगवान के चरणों में निर्माल्य कैसे चढ़ेगा? यह शरीर और यह मन तो संसार में घिस-पिट कर पुराना और दुर्गन्धयुक्त हो चुका है। कौन-सा मुँह लेकर प्रभु को चढ़ाओगे इसे? हे जीव, सूखे और सड़े मन्दार पुष्प नहीं, बल्कि ताजा और नवविकसित सुमन चढ़ाओ अपने देवता को, तो जानें! तगड़ी जिन्दगी प्रभु के लिए अर्पण करो, तुम धन्य बन जाओगे। जो उसे सब देते हैं, वे सब पाते हैं। उसे जो थोड़ा देते हैं, उतना ही पाते हैं।

हे मुमुक्षु! यदि पाना चाहते हो, तो अपने आप को पहले मिटा दो। जिन्होंने अपना भार मुझ पर डाल दिया है, उनका योग और क्षेम मुझे वहन करना पड़ता है। तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन की जिम्मेदारी मुझ पर है। मुझे खबर रखनी ही पड़ेगी। कोई मुझसे कुछ न कहे, तो भी मैं सबकी सुन लेता हूँ। मैं कहता नहीं, जान लेता हूँ। मुझे तुम्हारे जीवन की प्रत्येक आवश्यकता की खबर है। मैं सब की सुधि लेता हूँ। मेरा अपना ही ढंग है। यह मेरा सहज जीवन है। मैं सदा मदद के लिए तैयार रहता हूँ।

—'योग साधना' से संकलित

यह समझ लो कि जो कुछ तुम्हें मिल रहा है, वह ईश्वर का वरदान है, तुम्हारे मंगल के लिए है। इस दशा में क्या कोई दु:खी, आगत से असंतुष्ट और अनागत के लिए परेशान रहेगा?

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भक्ति की परिणति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग में जब हृदय शब्द का उपयोग होता है तब उसका तात्पर्य शारीरिक अंग से नहीं, बल्कि उस सूक्ष्म केन्द्र से होता है जहाँ से सकारात्मक तथा नकारात्मक, दोनों प्रकार की भावनाएँ उपजती हैं। भावनाएँ यहाँ अपने मूल रूप में होती हैं। जो भावना महत् अर्थात् अहंकार, बुद्धि, चित्त और मनस् के स्तर तक पहुँचती है, वह रूपान्तरित भावना होती है। वह भावना मन के उस क्षेत्र विशेष के अनुरूप कटी-छंटी रहती है, जहाँ विचार, इच्छाएँ और अनुभूतियाँ प्रकट होती हैं। मन में प्रतिबिम्बित होकर तुम्हारी मनोदशा को बदलने से पहले जब भावनाएँ हृदय के स्तर पर उत्पन्न होती हैं, उनका स्वरूप प्रबल, अपरिष्कृत ऊर्जा का रहता है। वह ऊर्जा इतनी प्रबल होती है कि वह तुम्हें अपने साथ बहा ले जा सकती है। वह भावना अपनी विषय-वस्तु के अलावा अन्य सभी चीजों को विस्मृत करा देती है। क्रोध, आकर्षण, ईर्ष्या, द्वेष—सभी उस अपरिष्कृत ऊर्जा की अभिव्यक्तियाँ हैं। भावना के संदर्भ में योग मन और हृदय को भिन्न इकाइयों के रूप में देखता है। बहिर्मुखी भावनाओं को अन्तरात्मा की ओर प्रवाहित करने में हृदय की कहीं अधिक भूमिका रहती है।

जब हृदय बाह्य परिवेश के सम्पर्क में आता है, तब इन्द्रिय-विषयों के संसर्ग से उसमें कुछ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। श्री स्वामीजी कहते हैं कि भावनाएँ अपने मूल रूप में पूर्णतया शुद्ध होती हैं। वे शुद्ध ऊर्जा हैं, भौतिक अभिलाषाओं और

आकांक्षाओं से पूर्णतया अप्रभावित। अपने मूल रूप में वे एक स्फटिक-खण्ड के समान होती हैं—साफ, पारदर्शी और रंगहीन। लेकिन जब उसी स्फटिक को किसी वस्तु पर रख देते हो तो क्या हो जाता है? अगर उसे लाल कपड़े पर रखते हो तो उसमें लाल रंग दिखाई देता है। उसे काले कपड़े पर रखते हो तो काला रंग और नीले कपड़े पर रखते हो तो नीला रंग झलकता है। स्फटिक का अपना तो कोई रंग है नहीं, पर जिस किसी वस्तु पर वह रखा जाता है उसी का रंग ग्रहण कर लेता है। यही बात हमारी भावनाओं पर भी लागू होती है। मूलत: वे रंगहीन हैं, पर जब किसी घटना, विचार या वस्तु के सम्पर्क में आती हैं, तब उसी का रंग ग्रहण कर लेती हैं और वह रंग फिर हमारे मानसिक व्यवहार को प्रभावित करने लगता है।

मान लो तुम सड़क पर चल रहे हो और अचानक तुम्हारी नजर सड़क के किनारे पड़ी रुपयों से भरी एक थैली पर पड़ती है। तुम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकोगे। जब तुम उस लावारिस रुपयों की थैली को देखते हो तब कौन-सी भावना तुम्हारे अन्दर जागती है? लोभ की। जब तक तुमने रुपयों की उस थैली को नहीं देखा, लोभ का अस्तित्व नहीं था। जिस क्षण तुमने उसे देखा, मन और हृदय में एक प्रतिक्रिया हुई। मन कहता है, 'इसे ले लो, लावारिस ही तो पड़ा है' और हृदय की भावनात्मक ऊर्जा लोभ का रूप ले लेती है।

एक छोटे शिशु को देखकर किस भावना का उदय होता है? स्नेह की भावना स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। हमें उस भाव को बलपूर्वक लाना नहीं पड़ता। उसी प्रकार जब तुम किसी अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को देखते हो, तब स्वाभाविक प्रतिक्रिया अस्वीकृति और द्वेष की होती है। जब अपने प्रेमी को देखते हो, तब स्वाभाविक प्रतिक्रिया आकर्षण और वासना की होती है।

जैसे-जैसे मन अपने वातावरण के भिन्न-भिन्न इन्द्रिय-विषयों के सम्पर्क में आता है, वैसे-वैसे विशेष भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का अनुभव होता है। भावनाएँ विभिन्न रंग धारण करती जाती हैं, हालाँकि अपनी स्वाभाविक अवस्था में वे वर्णहीन ही होती हैं।

भावनाओं का दिशान्तरण

हृदय के सकारात्मक और सात्त्विक गुणों की जागृति का उपाय है—बहिर्मुखी भावनाओं को अन्तरात्मा की ओर दिशान्तरित करना। जब भावनाएँ बहिर्मुखी होती हैं तब उनसे हमेशा नकारात्मक या स्वार्थपरक प्रतिक्रिया होती है। इसके विपरीत जब भावनाएँ आत्मोन्मुखी होती हैं, तब प्रतिक्रिया संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण होती है और विवेक द्वारा निर्दिष्ट होती है।

जब भावनाएँ समन्वित और शान्त हो जाती हैं तब मन सद्गुणों को आत्मसात् करने की दिशा में अपने आप प्रवृत्त होता है। वह शुभ, सकारात्मक, रचनात्मक

और सृजनात्मक प्रतिभाओं को हृदयंगम करता है। उदात्त भावनाएँ उस समय जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भावनाओं को समझने, सम्हालने और दिशान्तरित करने की यह विधि भक्ति योग में समझायी गई है।

भक्ति मार्ग और भक्ति योग

भक्ति को दो रूपों में देखा जाता है। पहला है भक्ति मार्ग, और दूसरा, भक्ति योग। भक्ति मार्ग कर्म-काण्ड और विधि-विधान युक्त मार्ग है, जिसे विभिन्न धर्मों ने प्रार्थना, पूजा, आराधना, मंत्र जप आदि के रूप में अपनाया है। भारतीय चिन्तन परम्परा भक्ति मार्ग और भक्ति योग में विभेद करती है और हमारे शास्त्र इस भेद को स्पष्ट रूप से समझाते हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति मार्ग को नवधा भक्ति के रूप में बताया गया है–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन और वन्दन, ये छः चरण बाह्य विधियाँ हैं जिनके द्वारा व्यक्ति दिव्यता के स्रोत से जुड़ पाता है। ये विधियाँ अपने आराध्य से एक आन्तरिक सम्बन्ध विकसित करने में सहायक होती हैं, जिसका अनुभव सातवें और आठवें चरण में होता है। अन्ततः नौवें चरण में पूर्ण आत्म-समर्पण सिद्ध होता है।

दूसरी ओर, भक्ति योग वह मार्ग है जिसमें तुम अपनी भावनाओं का अवलोकन, दिशान्तरण और परिष्कार करते हो। भावनाओं को रूपान्तरित करके उनमें स्थिरता लानी है। योगीजन कहते हैं कि भक्ति को सिद्ध करने के लिए तुम्हें अपने जीवन और वातावरण को, अपनी मानसिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्तियों को सुव्यवस्थित करना होगा। भक्ति योग अपनी नकारात्मक मनोवस्थाओं और व्यवहारों का अवलोकन एवं रूपान्तरण करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा तुम सही और गलत के बीच विभेद करना जान सकते हो।

भक्ति मार्ग भगवन्नाम के श्रवण और कीर्तन से प्रारम्भ होता है, जबकि भक्ति योग का पहला पड़ाव है संग। यह बात याद रखो कि भक्ति का वास्तविक प्रयोजन भावनाओं की शुद्धि से है, पर जब धर्मों ने भक्ति के विभिन्न घटकों को अपने दायरे में लिया तब उन्हें भक्ति को एक बाह्य कर्मकाण्ड का रूप देना पड़ा जो मनुष्य को अपने आराध्य से जोड़ता है। इसलिए भक्ति मार्ग में माला जपना, प्रार्थना करना, मंत्रों-स्तोत्रों द्वारा देवताओं की स्तुति करना आदि अनेक बाह्य कर्मकाण्ड इस भाव से किये जाते हैं कि 'मैं भगवान से जुड़ रहा हूँ।' भगवान के साथ यह एक धार्मिक सम्बन्ध है। भक्त पूजा-स्थल और पूजा-पद्धति से तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करने का माध्यम बना लेता है। ऐसी भक्ति धार्मिक है, यौगिक नहीं।

श्री राम द्वारा नवधा भक्ति की शिक्षा

यौगिक भक्ति व्यक्तित्व-रूपान्तरण की प्रक्रिया है। रामचरितमानस में श्री राम द्वारा यौगिक भक्ति की व्याख्या की गई है। श्री राम अपने सीमित व्यक्तित्व के अतिक्रमण को भक्ति कहते हैं। अपने उपदेश में वे कहते हैं कि अपने संगों-सम्बन्धों को परखना भक्ति सिद्ध करने का प्रथम सोपान है।

अगर तुम सज्जनों और सत्पुरुषों की संगत करते हो तो कालक्रम में तुम भी उनके जैसे सद्‌गुण आत्मसात् कर लोगे। अगर तुम नकारात्मक व्यक्तियों का संग करते हो, तो उनके विचार और भावनाएँ ग्रहण कर तुम स्वयं नकारात्मक बन जाओगे। इसलिए जीवन में अच्छे, सद्‌गुण-सम्पन्न और सत्कर्मी व्यक्तियों का संग करो जो तुम्हें प्रेरित और उत्साहित कर सकें। भक्ति सिद्ध करने की यह पहली शर्त्त श्री राम माता शबरी को बताते हैं। 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा'—मन, वचन और कर्म से पवित्र बनने हेतु पवित्र व्यक्तियों का संग करो।

'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा', अर्थात् दूसरा चरण है मेरी कथाओं से प्रेम। यह श्री राम द्वारा बतलाई अगली शर्त्त है। अक्सर लोग अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए अनावश्यक वाद-विवाद और बहस में अपना समय नष्ट कर देते हैं। 'मैं सही हूँ और तुम गलत हो', उनका यही भाव रहता है। आलोचना, गप्पबाजी और इधर-उधर की अनर्गल बातें पूर्णतया निरर्थक और निष्फल होती हैं। उनसे न तो कोई प्रेरणा मिलती है, न ही अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने की विधि ही प्राप्त होती है। इसलिए अपने कीमती समय का उपयोग परमात्मा के बारे में अध्ययन, चिन्तन, चर्चा और अनुभव करने में करो। उपन्यास के बदले शास्त्र पढ़ो। उपन्यास मात्र मानसिक मनोरंजन करते हैं, पर अगर तुम सद्‌ग्रन्थों का अध्ययन करोगे तो ऐसी शिक्षा और प्रेरणा मिलेगी जिससे तुम्हारे जीवन का उत्थान होगा।

अगर तुम ईश्वर, सृष्टि और संसार की प्रकृति और गुणों का अध्ययन करोगे, तो तुम जीवन के प्रति उचित मानसिकता और दृष्टिकोण विकसित कर पाओगे। जीवन क्रम-विकास की प्रक्रिया है, और तुम्हें इस प्रक्रिया को सहयोग देना है। जीवन व्यर्थ की गप्पबाजी या ईर्ष्या, घृणा और क्रोध जैसी तुच्छ भावनाओं में नष्ट करने के लिए नहीं मिला। जीवन का एक निश्चित उद्‌देश्य है, जिसे स्वयं अनुभव करना है। इसलिए ऐसे साहित्यों पर चिन्तन-मनन करो जो तुम्हें स्वयं, संसार और ईश्वर के बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकें। यह यौगिक भक्ति का दूसरा चरण है।

श्री राम द्वारा निरूपित भक्ति का तीसरा चरण है निरभिमानी और विनम्र बनना। पूर्णरूपेण अहंकार रहित होना तो सम्भव नहीं, लेकिन कम-से-कम अपने दम्भ और आन्तरिक कठोरता से तो तुम मुक्त हो ही सकते हो। दम्भी होने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे स्वभाव में नम्यता या लचीलापन नहीं है। आन्तरिक रूप से नम्य बनो, दम्भ की तीव्रता को कम करो। विनीत बनो।

श्री स्वामीजी बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से मुझे अनेक चीजों की शिक्षा दिया करते थे। वे मुझसे कहते, 'अगर तुम कोई काम जानते हो, और उसे बहुत बढ़िया ढंग से कर सकते हो, तो भी हमेशा यही सोचो कि तुम नहीं जानते, ताकि कर्मों में तुम्हारी पूर्ण सजगता बनी रहे।' यदि तुम सोचते हो कि तुम जानते हो, तो तुम्हारी सजगता तुम्हारे कर्म से अलग रहती है। जब सजगता कर्म से हट जाती है, तब अहंकार इस रूप में प्रकट होता है– 'मैं यह काम आसानी से कर सकता हूँ।' मन के अन्दर इस प्रकार के भाव उठते हैं– 'तुम मुझे समझाने वाले कौन होते हो? तुमसे बेहतर मैं जानता हूँ।' यही अहंकार का प्रारम्भ है। श्री स्वामीजी मुझसे कहा करते थे, 'भले ही तुम सभी चीजों में माहिर हो जाओ, लेकिन अपने मन में हमेशा यही सोचो कि तुम नौसिखिये हो।' और मैंने अपने गुरु के इस निर्देश का पालन किया है। अपने गुरु के निर्देशों और शिक्षाओं का पालन करके विनम्रता का विकास करना चाहिए। जब तुम विनम्र हो जाते हो तब हृदय की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर सकारात्मक अभिव्यक्तियाँ प्रकट होती हैं। ईर्ष्या, लोभ और द्वेष जैसे भाव समाप्त हो जाते हैं; उनका स्थान प्रेम, करुणा, सहानुभूति और सौहार्द ले लेते हैं।

इस तरह भक्ति की यौगिक अवधारणा तुम्हारे मनोवैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित है। भावनाओं की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए यह तुम्हारे स्वभाव का सूक्ष्म परिष्कार करती है। श्री राम द्वारा वर्णित भक्ति मार्ग का अनुसरण करने से हृदय की प्रतिभाओं का विकास होता है। स्वयं को इस मार्ग पर स्थापित कर लेने पर तुम्हारी भावनाएँ अन्तरात्मा की खोज में दिशान्तरित हो जाएँगी। जब अन्तरात्मा का साक्षात्कार होगा तब समझ में आ जाएगा कि जीव परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है और यही भक्ति की परिणति है।

–'बुद्धि, भावना और कर्म' से उद्धृत

अध्यात्म की यात्रा–तमसो मा ज्योतिर्गमय

संन्यासी यौगप्रिया, पटना

नियति युगों का निर्धारण स्वयं करती है तथा उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था भी। दिव्य आत्माओं का इस धरा पर अवतरण उसी की भूमिका मात्र है जो कालान्तर में फलीभूत होती है। दिव्य आत्माएँ अपनी दिव्य ऊर्जा में समाहित उच्च चेतना में हजारों वर्षों तक लीन रहती हैं। नियति किसी महान् प्रयोजन हेतु उनका आवाहन करने की प्रेरणा किसी महासंत को प्रदान करती है। इन उच्च आत्माओं का अवतरण भी निज इच्छा से होता है कि वे कब, कहाँ और किस कुक्षि को अपने पुण्य कर्मों का हेतु बनायेंगे, क्योंकि इसके लिए उनसे भी अधिक ऊर्जावान् शक्ति की आवश्यकता है जो उन्हें धारण करने की क्षमता रखती हो।

'युग-परिवर्तन' एकाएक नहीं होते। कभी-कभी शताब्दियाँ और कभी युग भी बीत जाते हैं। एक सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु शुद्ध-भाव एवं तितिक्षा की आवश्यकता पड़ती है जो विषम-से-विषम एवं विपरीत परिस्थितियों में भी लक्ष्य प्राप्ति की ओर धारणा बनाए रख सके और अनुकूल, निर्धारित समय पर उसे सुखद परिणाम दे सके।

भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परम्पराओं का लुप्त होना मानवता के लिए एक घातक स्थिति है। कलियुग का प्रारम्भ एवं नकारात्मक प्रवृत्तियों में वृद्धि, यह भी नियति द्वारा ही निर्धारित है। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान पूरे विश्व की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। अराजकता, असंतोष एवं विषाद का साम्राज्य व्याप्त था। ऐसे में मानवीय चेतना में परिवर्तन एवं युग-परिवर्तन की रूपरेखा को सुनिश्चित करना भी नियति के अधीन ही है। हमारे पूजनीय परम दादा गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी इस योजना के प्रणेता हैं जिन्हें प्रेरणा मिली मानवता को इस दारुण ज्वाला से मुक्ति दिलाने की। मलाया में एक चिकित्सक के रूप में कार्यरत थे, लेकिन एक दिन सब कुछ त्याग कर एक नये मिशन की ओर चल पड़े। वह मंगलकारी योजना थी समाज में योग की स्थापना जिससे एक दिव्य जीवन जीने की कला का प्रतिपादन हो सके। योग ही वह बूटी थी जो पीड़ित जीवात्माओं की मानसिकता में परिवर्तन लाने हेतु पिलाई जा सकती थी।

डूबते को तिनके का सहारा! स्वामी शिवानन्द जी द्वारा प्रचारित यौगिक जीवनशैली संजीवनी की तरह काम कर गयी। लोगों में जीने की उम्मीद जगी और सारा विश्व उनके महामंत्र के पीछे सैलाब की भाँति उमड़ पड़ा। उस परम तत्त्व में आस्था की पुर्नस्थापना हुई जो सबके हृदय में विराजमान है, कहीं दूर जाने की आवश्यकता ही नहीं।

योजना के अगले कदम पर उनके परमप्रिय शिष्य, अवधूत परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी का पदार्पण हुआ जो बचपन से ही दिव्य चेतना से युक्त थे। उन्होंने अपने गुरु के योग-प्रचार मिशन को हिमालय की चोटी से उतारकर समुद्र की गहराई तक पहुँचाया। सुख-सम्पत्ति, नाते-रिश्ते, घर-बार सब कुछ त्याग कर उन्होंने अपने जीवन को आहुति बनाकर अपने गुरु की समिधा में समर्पित कर दिया।

किन्तु प्रश्न केवल योग का प्रसार एवं प्रचार नहीं था, अपितु भविष्य के लिए एक महापरिवर्तन की रूपरेखा रखी जा रही थी जिसके लिए एक ऐसी दिव्य ऊर्जा की आवश्यकता थी जिसमें भगीरथ की तपस्या, समुद्र की महानता, धरती की सहनशीलता तथा समर्पण की पराकाष्ठा का समग्र स्वरूप विद्यमान हो। श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने अपनी सम्पूर्ण इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति को समर्पित कर अपने मानस-पुत्र के रूप में एक दिव्य आत्मा का आवाहन किया जो इस 'युग-परिवर्तन' रूपी कल्याणकारी प्रयोजन के प्रणेता हैं, और वे हैं हमारे परम पूजनीय गुरुजी, परमहंस स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी जिनकी दिव्य ऊर्जा के स्फुरण से आज समस्त संसार स्पंदित है।

'युग-परिवर्तन' के जिस बीज को स्वामी शिवानन्द जी एवं स्वामी सत्यानन्द जी ने संरक्षित रखा उसे स्वामी निरंजनानन्द जी ने अपने अथक परिश्रम से प्रस्फुटित होने को तैयार किया है। मात्र चार वर्ष की अवस्था में अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी के संरक्षण में आए और आज वे जनता की चेतना में जीवनदायिनी बयार की भाँति बहने लगे हैं। हमारी मानसिकता बंजर भूमि सदृश हो गयी थी जिसे स्वामीजी अपने प्रेम एवं वात्सल्य की नमी देकर कोमल बनाने का प्रयास कर रहे हैं। भूमि को उवर्रा बनाने हेतु अपने तप का खाद डाला है और यज्ञ अनुष्ठानों से उसकी रक्षा की है ताकि बीजारोपण के लिए भूमि तैयार की जा सके। सद्गुरुओं के संकल्प के बीज को पोषित करने के लिए तीन मूलमंत्रों का शंखनाद किया है—सत्कर्म, सद्विचार एवं सद्व्यवहार।

पिछले दो वर्षों से विभिन्न सत्रों के द्वारा वातावरण को शुद्ध करने की प्रक्रिया जारी है जिसमें मुख्यत: आध्यात्मिक चेतना को सृजनात्मक दृष्टि प्रदान की गयी है जो हमारी जन्मजात धरोहर है। नकारात्मकता के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए संस्कार, साधना, संन्यास परम्परा एवं हमारी भारतीय संस्कृति आदि को पंचाग्नि के भस्म में बूटी बनाकर स्वामीजी ने अपने प्रेम रस में घोलकर देना शुरू किया है। इस आन्दोलन में प्रेम रस के साथ-साथ कुनैन रूपी अनुशासन का प्रयोग भी कठोरता से किया जा रहा है ताकि इसे अन्यथा न लिया जा सके, बल्कि पूरी निष्ठा, श्रद्धा एवं समर्पण के साथ आत्मसात् किया जा सके। पूर्ण सजगता के साथ आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया का संदेश घोर अंधकार में प्रकाश की किरण की भाँति सबका मार्ग प्रदर्शित कर रहा है और इसके मंगलकारी परिणाम भी दृष्टिगत हो रहे हैं। आज सम्पूर्ण मानव समाज में स्वामी निरंजनानन्द जी एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति आलोकित हो रहे हैं।

वर्तमान युग की परिस्थितियाँ बिल्कुल प्रतिकूल हैं—आतंकवाद, अराजकता, मानवीय चेतना का ह्रास, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुसरण, भारतीय संस्कृति का विलय—सब कुछ मिलकर हमारी मानसिकता को नपुँसक बना चुके हैं जहाँ विवेकशक्ति बिल्कुल गौण हो चुकी है। ऐसे में अध्यात्म को पुन: स्थापित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। नवयुग के निर्माण एवं मानवता के कल्याण हेतु स्वामी निरंजनानन्द जी ने इस चुनौती को स्वीकार करने का संकल्प लिया है, क्योंकि मानवता की रक्षा अध्यात्म की नैया पर चढ़कर ही की जा सकती है। वही नैया इस भवसागर के पार ले जा सकती है वरना मानव सभ्यता का अंत बहुत दूर नहीं। स्वामीजी ने सम्पूर्ण विश्व को यह संदेश दिया है कि हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का पुनरुद्धार नयी पीढ़ी की मानसिकता के रूपान्तरण से ही सम्भव है। हमारी युवा पीढ़ी में वह चेतना काष्ठवत् अग्नि के समान विद्यमान है जिसे एक चिंगारी मात्र की आवश्कयता है प्रज्वलित होने को।

योग के प्रचार एवं प्रसार के पश्चात् अब मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु प्रक्रिया का श्रीगणेश हो चुका है। स्वामीजी ने वर्तमान सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर गहन चिंतन के पश्चात् 'यम-नियम' की सरलतम विधियों को आधारशिला के रूप में एक-एक ईंट के रूप में बिछाया है—सकारात्मक परिवेश के निर्माण हेतु प्रसन्नता का यम, मन की चंचलता को शांत करने हेतु जप का नियम, नकारात्मक वृत्तियों के रूपान्तरण हेतु क्षमा, तामसिक अहंकार निवृत्ति हेतु नमस्कार, तामसिक प्रवृत्तियों के निवारण हेतु मनोनिग्रह, इन्द्रियों के सही प्रयोजन हेतु दान्ति, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना हेतु अद्वेष व मैत्री, चेतना के स्तरों में विकास हेतु भाव-शुद्धि तथा लक्ष्य-प्राप्ति में दृढ़ संकल्पित होने हेतु तितिक्षा।

गुरु जी द्वारा बिछाए गए एक-एक ईंट पर श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक कदम रख कर अध्यात्म की यात्रा जारी रखी जा सकती है जो एक दिन भक्ति की मंजिल तक ले जायेगी, जहाँ ईश्वरीय अनुकम्पा की वृष्टि स्वत: मूर्त्त रूप लेती है और सर्वत्र आनन्द सागर का साम्राज्य, शान्तिमय जीवन की उपलब्धि एवं संतोषप्रद जीवन की अनुभूति सम्भावित है।

स्वामी निरंजनानन्द जी ने हमारी कर्मठ युवा-शक्तियों को अध्यात्म की सीढ़ी पर चढ़ाकर भक्ति के अमृतपान का सहज एवं सुगम मार्ग दर्शाया है। शर्त केवल एक है—अपने इष्ट पर, अपने श्रद्धेय पर, एवं स्वयं अपनी शक्ति पर अटूट श्रद्धा, प्रेम एवं विश्वास। हर क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने हेतु सदैव सजग रहने की सीख। गुरु तो करुणा के सागर हैं जिनकी अमृतवाणी की वर्षा निरंतर हो रही है, प्रश्न पात्रता का है कि हमने अपने हृदय कलश को मलों एवं विक्षेपों का भंडार बना रखा है या पावन, निर्मल बाँसुरी सदृश खोखला जिसमें इष्ट अपनी ऊर्जा का संगीत भर सकें एवं हृदय रूपी मंदिर में निवास कर सकें।

मेरे जीवन का उद्देश्य

जिज्ञासु हृदयमैत्री, मुंगेर

मैं कई दिनों से कुछ लिखने की कोशिश कर रही थी। मन में कुछ सुखद यादों को जमा करती रही, किन-किन बातों की चर्चा करनी है, वह भी तय कर चुकी थी, परन्तु अपने लेख का शीर्षक नहीं सोच पाई।

फिर एक दिन आश्रम में किसी संन्यासी ने मुझसे प्रश्न किया, 'तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है?' उसी क्षण मेरे अन्तर्मन में अनेक विचार आने शुरू हो गये। अगले पाँच मिनट में कितनी सारी इच्छाएँ और संकल्प मुझे स्मरण हो आये। मुझे उस वक्त जो समझ में आया मैंने बोल दिया। मेरा बचकाना जबाव कुछ ऐसा था– अभी मैं कॉलेज में पढ़ाई कर रही हूँ। इस जगह से देखती हूँ तो सफलता दूर खड़ी दिखायी पड़ती है। मैं अपने माता-पिता का मजबूत सहारा तब बन पाऊँगी जब मैं सफल इंसान बनूँगी। गुरु वाक्य 'मैं साथ हूँ' चरितार्थ करने लायक बनना है मुझे।

हमारी सामाजिक व्यवस्था में एक परिवार के अंदर कुछ लोग एक-दूसरे को सहारा देकर, प्यार देकर और सेवा देकर साथ में एक छत के नीचे रहते हैं। हम बच्चों की परवरिश और सफलता में बड़ों का पूर्ण योगदान रहता है। थोड़े बड़े बच्चे जो स्कूल जाना शुरू करते हैं, फिर कॉलेज जाते हैं, उनके व्यक्तित्व पर शिक्षकों और दोस्तों का प्रभाव भी अत्यधिक पड़ता है। मंजिल की ओर तन्मयता से बढ़ते हमारे कदम पूर्णता का एहसास कराने लगते हैं। अपने अंदर कमी का भान तब होता है जब गुरुकृपा होती है।

आश्रम में पहला कदम रखने के बाद पता चला कि बहुत कुछ सीखने के बावजूद भी बहुत सीखना अभी बाकी ही है। हर वक्त 'मैं' बना रहना और 'मेरा है' सोचना

कहाँ तक सही है? आश्रम जीवन का अनुभव नहीं होता और श्रीगुरुदेव का सत्संग सुनने को नहीं मिलता तो पता ही नहीं चलता कि अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं में कितना सही और जरूरी होता है और कितना छोड़ने लायक होता है। ईश्वर और श्रीगुरुदेव की कृपा से मुझे जो प्राप्त हुआ है और भविष्य में प्राप्त होगा, उसमें से अपनी जरूरतों के मुताबिक रखकर बाकी जरूरतमंद लोगों में बाँटना और धार्मिक कार्यों में लगा देना ही उचित है।

नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्ककाष्ठस्य मूर्खश्च न नमन्ति कदाचन॥

फल से लदे वृक्ष झुके रहते हैं, सज्जनों के जैसे, जबकि उन फलों को प्रयोग किसी और के द्वारा किया जाता है। यह परोपकार की पराकाष्ठा है। एक फल भी नहीं रखते खुद के लिये, मगर फल उगाने की प्रक्रिया में सतत् लगे रहते हैं। गुणवान् जन कितने नम्र स्वभाव के और कितने सज्जन होते हैं, यह उनके संपर्क में आने वाले को भली प्रकार महसूस होता है। *पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते*–अच्छाई लोगों पर और माहौल पर अपनी छाप छोड़ जाती है।

बिना पत्ते सूखे ठूँठ की अकड़ देखने लायक होती है। न ही फल देने लायक और न ही छाया। बिल्कुल उसी तरह बुद्धि और विवेक से हीन मूर्खजन किसी भी सूरत में झुक नहीं सकते, हार नहीं मान सकते और अपने अंदर की बुराइयों को स्वीकार नहीं कर सकते।

वृक्ष उन सब के सहयोग को ऋण मानकर संचित करता है जो उसे मिट्टी, जल, सूर्यादि ने उस वक्त दिया जब वह बीज रूप में था। उसी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर वह अपने फल, फूल और छाया प्रदान करता है।

मुझे सफलता का अहंकार न हो, क्योंकि मुझे पता है कि कितनों की मेहनत और कितने आशीर्वादों के बाद कामयाबी नसीब होती है। मैं सहज जीवन पसंद करूँगी ताकि जरूरतमंदों को मुझतक पहुँचने के लिये मेहनत न करनी पड़े। श्री गुरुदेव का आदेश मानना मेरे जीवन का लक्ष्य बना रहे, मेरे मन में बड़ों के प्रति सम्मान और छोटों के प्रति प्रेम का भाव रहे। विद्या और धन बाँटने से बढ़ते हैं, इसलिये मैं खुद से छोटे बच्चों को पढ़ाई में मदद करूँगी।

श्री गुरुदेव के दिखाये मार्ग पर चलकर मैं यौगिक जीवनशैली अपनाने का प्रयास करूँगी। आसन, प्राणायाम, मंत्र साधना को नियमित रूप से अपनाकर जीवन में संतुलन बनाने का प्रयास करूँगी। कोई कुछ भी कर ले, मैं हमेशा मुस्कुराकर उन चीजों से परे जाने का प्रयास करूँगी। अज्ञान से बंद मेरी आँखों को खोलने के लिये कोटि-कोटि धन्यवाद श्रीगुरुदेव!

गुरु की महिमा हरि सो भारी, वेद पुराण सब ही विचारी।

योग कैप्सूल के अनुभव

इस वर्ष फरवरी से अप्रैल के बीच श्वास सम्बन्धी, पाचन सम्बन्धी, गठिया सम्बन्धी तथा पूर्ण स्वास्थ्य सम्बन्धी योग कैप्सूल संचालित किए गए। इन सत्रों के कुछ प्रतिभागियों के अनुभव संकलित कर यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मैं लम्बे समय से श्वास सम्बन्धित रोग से पीड़ित था। तब डॉक्टर एवं सहपाठियों ने मुझे बिहार योग विद्यालय, मुंगेर से योग सीखने की प्रेरणा दी। शुरू में मुझे थोड़ा असहज महसूस हो रहा था कि आश्रम का जीवन कैसा होगा, लेकिन सब कुछ ठीक-ठाक रहा। शान्ति मंत्रों ने मन और शरीर को काफी प्रभावित किया। आसन, प्राणायाम, सजगता, योगनिद्रा एवं अजपाजप से मेरे शरीर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। आश्रम का शुद्ध, स्वच्छ वातावरण मन और शरीर को और शुद्ध बना देता है। इसके अलावा आश्रम का सुबह का नाश्ता, दोपहर का भोजन एवं रात्रि का भोजन बहुत शुद्ध एवं पौष्टिक है। आश्रम की जीवनशैली, जैसे अपने आवास एवं आस-पास को साफ-सुथरा रखना तथा किसी भी कार्य को नि:स्वार्थ एवं प्रेमपूर्वक तरीके से करना भी बहुत लाभदायक रहा। आश्रम के शाम के समय के भक्ति गीत आत्मा को और भक्तिमय बना देते हैं। साथ ही आश्रम के मौन के अनुशासन ने मुझे काफी प्रभावित किया, क्योंकि इससे मेरा मन शान्त हुआ एवं नकारात्मक विचार मन में नहीं रहे। इस छोटे-से आश्रम प्रवास से मेरे स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ है जिसके लिए मैं बिहार योग विद्यालय का सदा आभारी रहूँगा।

– विजय कुमार साव, चित्तरंजन, पश्चिम बंगाल

मैं गठिया सम्बन्धी योग कैप्सूल सत्र करने आश्रम आया। सत्र से पहले मुझे बाँयें घुटने में दर्द था। प्रशिक्षण के चार-पाँच दिन बाद दर्द लगभग खत्म हो गया। प्रशिक्षण के दौरान सभी स्वामीगण अनुभवी एवं दक्ष लगे। बड़े प्रेम से उन लोगों ने योग सिखाया। यहाँ आश्रम में रहने-खाने की व्यवस्था भी काफी अच्छी लगी। मैं हर तरह से संतुष्ट हूँ।

– देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, पटना, बिहार

आश्रम का जीवन बहुत ही शान्त और सुव्यवस्थित है। यहाँ आने के बाद हम अपने सारे तनाव और चिन्ताएँ भूल गये हैं। मन एकदम शान्त और प्रसन्न है। सात दिनों में किसी को अपने जीवन को व्यवस्थित तरीके से जीने का मार्गदर्शन मिल जाये तो इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है। शिक्षकों द्वारा कराये गये आसन-प्राणायाम अभ्यास से इस विषय में काफी सूक्ष्म जानकारी मिली। योगनिद्रा की कक्षा में बहुत अच्छी तरह बताया गया कि किस प्रकार हम अपने मन को साध सकते हैं और चेतना को सजग रख सकते हैं।

आश्रम की सारी व्यवस्थाएँ अनुकूल हैं, चाहे वह सफाई की व्यवस्था हो अथवा भोजन की। भोजन परोसना अपने आप में बहुत ही सुखद अनुभव रहा, माँ अन्नपूर्णा का आभास होता था। मुझे यहाँ कोई कमी महसूस नहीं हुई। आश्रम प्रवास में मोबाइल का इस्तेमाल न होना हमारे लिए बहुत ही हितकर रहा।

– सुमन अग्निहोत्री, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में यह मेरा पहला अनुभव था जो बहुत सार्थक व लाभकारी रहा। मेरी जीवनशैली में जो बदलाव आया है और लाना चाहती हूँ, उसमें मौन रहकर अपनी ऊर्जा बचाना, अनुशासित जीवन जीना तथा अपनी संकल्प शक्ति को पहचानना एवं सकारात्मक विचारों से उसे फलीभूत करना शामिल हैं। यहाँ रहकर मंत्रशक्ति के प्रभाव को अनुभव किया और अपने अंग-प्रत्यंग में श्वास का अनुभव बहुत अच्छा रहा। मूल बात यह जानी कि जैसे बाह्य वातावरण में सफाई जरूरी है वैसे ही शारीरिक व मानसिक सफाई भी जरूरी है। सार्थक जीवन के लिए योगनिद्रा, अजपाजप और दैनिक समीक्षा की क्रिया से नया अनुभव मिला। कुल मिलाकर यहाँ का वातावरण और दिनचर्या बहुत अच्छी लगी।

– दिव्या माण्डलोई, इन्दौर, मध्य प्रदेश

गठिया सम्बन्धी योग कैप्सूल का एक सप्ताह का सत्र मेरे लिए गागर में सागर की तरह रहा। हर जोड़ के आसन को हमारे शिक्षक स्वामीजी ने बहुत ही क्रमबद्ध ढंग से बताया, वैसे ही प्राणायाम करने का ढंग और फायदा भी बताया। योगनिद्रा एवं अजपाजप की कक्षा में मानसिक शान्ति महसूस हुई। यहाँ का वातावरण, यहाँ का पूजा-हवन, कीर्तन-भजन तथा यहाँ के छाया समाधि, ज्योति मन्दिर और अखाड़ा जैसे दिव्य स्थान, सभी मेरे मन-प्राण में बसे रहते हैं। जैसे बोलते हैं कि काशी नगर शंकर भगवान के त्रिशूल पर बसा है, वैसे मेरी यह भावना है कि यह आश्रम भी बड़े गुरुजी की संकल्प शक्ति पर बसा है, इसलिए यह हर तरह से सुन्दर एवं ऊर्जावान् है।

– सत्यमयी, पटना, बिहार

सबसे अच्छी अनुभूति यह रही कि बिहार योग विद्यालय में पाँव रखते ही मेरे नकारात्मक विचार गायब हो गये और यहाँ के लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता का भाव देखकर मुझे भी काफी प्रसन्नता हुई। कक्षाओं में अपने गुरुजनों की योगमय बातों से हमें काफी लाभ हुआ। आश्रम जीवन से भी काफी कुछ सीखने को मिला–कब जगना है, कब नाश्ता, कब काम, कब दोपहर का भोजन और कब रात्री भोजन करना चाहिये। पहले मैं दमा से पीड़ित था पर सत्र मे सीखे अभ्यासों को नियमित रूप से करने के बाद मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। अंत में यही कहूँगा कि मैं यहाँ की पूरी जीवन चर्या अपने जीवन में उतारने का प्रयास करूँगा।

– सुरेश कुमार शर्मा, समस्तीपुर, बिहार

योग कैप्सूल में आने का उद्देश्य शरीर की कुछ बीमारियों को ठीक करना था। विशेष रूप से उच्च-रक्तचाप और कमर तथा कूल्हे की समस्या का निदान ढूँढना था। यहाँ का योग सिखाने का तरीका लयबद्ध, आरामदेह और बेजोड़ है। बिना थके ही आसन बड़े आराम से हो जाते हैं।

योगनिद्रा और अजपाजप, ये नई चीजें सीखने को मिलीं। पिछले 18 वर्षों से योग आसन करता हूँ और ध्यान लगाने का अभ्यास करता रहा हूँ, किन्तु योगनिद्रा के बाद अजपाजप से मन बहुत जल्दी शान्त हो रहा है और ध्यान भी अच्छा लगना शुरू हो गया है। उम्मीद है योगनिद्रा से मेरा रक्तचाप सामान्य हो जाएगा तथा नाक बन्द होने की समस्या नेति क्रिया से ठीक हो जाएगी।

इस आश्रम का माहौल बेहद प्रसन्नता और उल्लासपूर्ण है। यहाँ आकर कर्म व श्रम का महत्त्व और आनन्द समझ में आया। सभी संन्यासियों का व्यवहार स्नेहपूर्ण और प्रेरक रहा। भविष्य में अगर मौका मिला तो पुन: यहाँ आने के लिए पूरा प्रयास करूँगा। जीवन की दिशा और दशा, दोनों बदलने में समर्थ है यह आश्रम।

– दिनेश कुमार राय, कोलकाता, पश्चिम बंगाल

योग के जिस व्यवसायीकरण और बाजारवादी स्वरूप का दर्शन आज हमारे चारों ओर हो रहा है उसके ठीक परे जाकर योगपीठ में योग, गुरु-शिष्य परम्परा, व्यावहारिक

जीवन की समझ, भावनात्मक सम्बन्ध एवं मानव मूल्यों की अनवरत ऊर्जा का जो प्रवाह हो रहा है उसे आत्मसात् करने का अवसर मुझे मिला।

सबेरे ब्रह्ममुहूर्त में उठकर यौगिक तरीके से दिनचर्या को संजोने का प्रयास करते हुए आसन-प्राणायाम की कक्षा, कर्मयोग का अद्भुत आनन्द, सुन्दरकाण्ड का पाठ, योगनिद्रा का अद्भुत अभ्यास, छाया समाधि के पास ध्यान, सत्यम्-वाटिका में संध्या कार्यक्रम के समय भजन-कीर्तन का आनन्द, रसोई में सेवा, अलग-अलग व्यंजनों का आनन्द, सब कुछ अद्भुत और अलौकिक शक्ति का एहसास कराता रहा। हमारी अकड़ी हुई मानसिकता, जकड़ा हुआ शरीर, जीवन जीने का पुराना तरीका, सब कुछ जैसे पिघलता महसूस हुआ। सभी तरह के संसाधनों से युक्त, विशेषकर बौद्धिक सम्पदा से परिपूर्ण इस आश्रम में आकर लगा जैसे मेरे जीवन में किसी अनुष्ठान की शुरूआत हो चुकी है। गुरुकृपा आगे भी बनी रहे, बस यही प्रार्थना है।

–विपिन कुमार, पटना, बिहार

यहाँ आकर पता चला कि योग सिर्फ आसन तक सीमित नहीं है, बल्कि योग जीवन को सही तरीके से जीने की एक विद्या है। सबसे अच्छी बात जो मैंने खुद के अन्दर इन दस दिनों में महसूस की, वह है निर्मलता, सरलता और उसका सबसे बड़ा कारण मुझे कर्मयोग लगता है जो आश्रम की जिन्दगी का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

दूसरा परिवर्तन जो मुझमें लग रहा है वह है भावनात्मक दृष्टिकोण और उसका श्रेय मैं यहाँ भक्ति योग को दूँगा। मैंने कभी सुन्दरकाण्ड का पाठ नहीं किया था, लेकिन यहाँ आकर जब मैं प्रतिदिन पाठ करने लगा तो शुरू में मुझे रोना आता था, पाठ करते हुए मेरे आँसू निकलते रहते थे! इसके साथ ही सायंकालीन भजन-कीर्तन भी बहुत अच्छा लगा।

अपने अनुभवी शिक्षकों से योगनिद्रा, काया-स्थैर्यम्, अजपा-जप और दैनिक समीक्षा सीखने और अनुभव करने के बाद पहले से ज्यादा आत्म विश्वास आया है और अब लग रहा है कि यदि मैं ऐसे ही प्रतिदिन अभ्यास करता रहा तो अपने लक्ष्य को जरूर और जल्दी ही प्राप्त कर लूँगा।

मैं दुबारा किसी सत्र में आने की कोशिश जरूर करूँगा और इस बात की भी कोशिश करूँगा कि योग का दीपक

जो आपने मेरे भीतर प्रज्वलित किया है वह बुझने न पाये। नियमित अभ्यास होता रहे और इस जीवनयात्रा में यौगिक तरीके से मैं उन्नति करता रहूँ, आगे बढ़ता रहूँ।

– विनीत कुमार पाण्डेय, नई दिल्ली

महान् कर्ण चौरा की गोद में बसी धरती पर एक कृत्रिम संरचना जिसे महान् स्वामी शिवानन्द सरस्वती के परम शिष्य, स्वामी सत्यानन्द जी ने दिव्य शक्ति के आदेशोपरान्त साकार किया! हथियारों की नगरी मुंगेर में अहिंसा का केन्द्र बिन्दु! ऐसा आश्रम जिसे गंगा मैया भी अपनी लहरों से शीतलता प्रदान करती है। 9 अप्रैल 2017 को आश्रम में प्रवेश के बाद यह अफसोस था कि मैंने इस धरती के स्वर्ग में पहले क्यों नहीं प्रवेश किया। हालांकि मुंगेर पदस्थापना के दौरान भूतपूर्व राष्ट्रपति, महामहिम अब्दुल कलाम साहब के आगमन पर गंगा दर्शन के मुख्य दरवाजे पर ड्यूटी की थी, किन्तु यंत्रवत्, सिर्फ नयनाभिराम हुआ, अंत:करण संतुष्ट नहीं हुआ।

मुंगेर से सन् 2003 में स्थानान्तरण के चौदह साल के बाद किसी अदृश्य शक्ति के बुलावे पर मैं खींचा चला आया। प्रथमत: तो मन-मस्तिष्क में ये बातें थीं कि मात्र दस दिनों में हमें स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से कोई संजीवनी बूटी तो मिलने से रही, परन्तु यहाँ के प्रवास के दौरान महसूस हुआ कि हमने अपनी आत्मा को अपने मन का गुलाम बना लिया है। योग के अभ्यास से इस गुलामी को खंडित करने का प्रयास किया गया। यह कैप्सूल कोर्स जरूर असरदार एवं प्रभावी होगा, अगर हमने यहाँ सिखायी बातों का 25% भी अपनी जिन्दगी में उतार लिया। शरीर स्वस्थ हुआ या नहीं, अभी पता नहीं, लेकिन मन तो 100% निरोग हो गया। पिस्टल रूपी मोबाइल फोन से दूरी एक प्रमुख कारण बना। पक्षियों एवं कोयलों की बोली लम्बे अरसे के बाद कानों में गुंजायमान हुई।

छाया समाधि के सामने प्रार्थना और आरती अद्वितीय रही, सत्यम् वाटिका के भजन अतुलनीय। ज्योति मंदिर में सुन्दरकाण्ड और गीता का पाठ अविस्मरणीय। बच्चों द्वारा प्रस्तुत की गई भजन संध्या बेहतरीन! अपने शिक्षकों के ज्ञान और अनुभव के बारे में जितना कहें उतना कम। अंत में यही कहूँगा कि धरती के इस स्वर्ग में आने का परम सौभाग्य मिला, न आने पर इसके अमृतपान से वंचित रह जाता।

– अमित नंदन, पटना

यहाँ आने से पूर्व मैं सोचता था कि योग सिर्फ आसन या शारीरिक व्यायाम है। मगर बिहार योग विद्यालय के द्वारा मुझे अनुभव हुआ कि योग का असली मतलब तो मन की शान्ति, धैर्य, संयम, अपनी इन्द्रियों को काबू करने का प्रयास, स्थिरता, सजगता और शारीरिक व्यायाम भी है। आज भारत योग को दुनिया में फैला रहा है।

पूरी दुनिया भारत को योग गुरु मानती है और इस वजह से भी हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि हम योग का सही और असली अर्थ उन्हें प्रदान कर सकें।

बिहार योग विद्यालय ने मुझे योग के माध्यम से एक अच्छा इन्सान और एक अच्छा भारतीय होना भी सिखाया। योग आज के युग का एकमात्र अस्त्र है जो हमें अपने सपनों का भारत बनाने में सहयोग करता है। यहाँ मुझे इसका अनुभव योग के द्वारा कुछ इस प्रकार हुआ–

राजयोग में योगनिद्रा से मैंने अपने मन को शान्त करना सीखा। मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन क्रोध होता है। अगर यह क्रोध नहीं होगा तो इस दुनिया में कोई लड़ाई ही नहीं होगी और इस तरह से मेरा देश योग के द्वारा जगह-जगह झगड़ों से मुक्त हो सकेगा।

हठयोग में मैंने बहुत सारे आसन-प्राणायाम सीखे जिनसे मेरा शरीर स्वस्थ रह सके। एक अच्छे स्वस्थ शरीर में अच्छे विचारों का निर्माण होता है। इस तरह से अगर हर भारतीय योग सीखे तो सभी स्वस्थ हो सकेंगे और अपने-अपने क्षेत्र में उन्नति कर सकेंगे। और जब सारे भारतीय अपने क्षेत्र में उन्नति करेंगे तो हमारा देश फिर से 'सोने की चिड़ियाँ' कहलाएगा।

भक्तियोग में मैंने पहली बार सुन्दरकाण्ड का पाठ पढ़ा, जबकि मेरे पापा रोज पढ़ते हैं और मुझे भी रोज बोलते हैं पढ़ने के लिए, मगर मैंने कभी उसका महत्त्व नहीं समझा। लेकिन यहाँ मैंने रोज सुन्दरकाण्ड का पाठ किया और मुझे बहुत शान्ति मिली। साथ ही सायं-साधना ने मुझे और भी समर्पित कर दिया भगवान के प्रति।

कर्मयोग मुझे सबसे अच्छा लगा और मैं चाहता हूँ कि हर भारतीय इस योग का हिस्सा बने। कर्मयोग से मुझे अनुभव हुआ कि इन्सान नि:स्वार्थ भाव से सेवा कैसे दे सकता है। कर्मयोग हमें हर इन्सान के तथा उसके काम के महत्त्व को दर्शाता है। यह हर तरह के सामाजिक भेद-भाव को खत्म करता है। कर्मयोग हर बेटे-बेटी को अपनी माँ के आँसुओं का अनुभव कराता है जब वह माँ घर का सारा काम अकेले ही करती है। कर्मयोग हमें बताता है कि कोई काम या कोई काम करने वाला व्यक्ति छोटा या बड़ा नहीं होता, बस हमारी सोच छोटी होती है।

अगर हम एक ऐसा भारत देखना चाहते हैं जहाँ हर व्यक्ति एक-दूसरे से सद्व्यवहार करे तो हमें जरूर कर्मयोग करना चाहिए। जब हम खुद शौचालय साफ करते हैं तब हम सार्वजनिक शौचालय साफ करने वाले व्यक्ति की महत्ता को समझ सकते हैं और तब हम उस व्यक्ति के प्रति अपना विचार-व्यवहार बहुत हद तक बदल सकते हैं। अंत में मैं सिर्फ यह कहना चाहूँगा कि बिहार योग विद्यालय, मुंगेर ने मुझे एक सरल, धैर्यवान् व्यक्ति बनाया और मैं कोशिश करूँगा की योग मेरी जीवनशैली का अंग बन सके।

– आशीष रंजन, नई दिल्ली

STOP PRESS

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

***योगा* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

***योगविद्या* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।